



भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी)
की केन्द्रीय कमेटी का मुखपत्र

प्रतिरोध का स्वर

16 मई 2020

वर्ष 34 संख्या 5(बी)

मूल्य 2 रुपये

कोरोना महामारी

मोदी की घोषणा लोगों की चिन्ताओं को सम्बोधित नहीं करती, ना ही देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने का कोई उपाय सुझाती है
लोगों को मदद देने के नाम पर 5 किशतों में
लोगों पर किया गया हमला

प्रधानमंत्री की घोषणा के अनुसार वित्तमंत्री ने 13 से 17 मई तक रोजाना राहत पैकेज की 'टोस' घोषणाएं कीं। इनमें जनता के लिए एक भी महत्वपूर्ण राहत नहीं दी गयी है। वित्तमंत्री के तमाम बयान इस बात को साबित करते हैं कि सरकार जनता की समस्याओं को हल करने के प्रति गैर-गम्भीर है और यह बात राजमार्गों पर पैदल चलकर बढ़ती संख्या में घर पहुंचने का प्रयास कर रहे प्रवासी मजदूरों की दुर्दशा और मजबूती से साबित करती है। इस पैकेज का गरीबों वाला हिस्सा खाली था।

दूसरी ओर मोदी के नेतृत्व वाली आरएसएस-भाजपा सरकार ने जनता पर गुजर रही इस त्रासदी को विदेशी व देशी कारपोरेट तथा बड़े जमींदारों को लाभ पहुंचाने के लिए अवसर में बदल दिया है। उन्होंने उन सभी 'सुधारों' पर अमल कर डाला जो साधारण समय में कठिन होता - श्रम कानूनों में परिवर्तन और कृषि व्यवस्था में बदलाव के।

इस कथित राहत पैकेज का बड़ा हिस्सा गांवों के उस महाजन के हिसाब-किताब जैसा था, जो मात्र 'सवा सेर गेहूँ' को वसूलने में गरीब किसान को अपना दास बना लेता है। कुल राहत के 20.97 लाख करोड़ रुपये होने की घोषणा हुई। इसमें सरकारी खर्च का हिस्सा लगभग गायब है और आरबीआई द्वारा बैंकों को दिये जाने वाले कर्ज का हिस्सा, बैंकों द्वारा आगे दिया जाने वाला कर्ज का हिस्सा, भरा पड़ा है। इस खर्च में उन योजनाएं का पैसा भी जुड़ा

है जो कई सालों तक सरकार ने खर्च करना है और इस साल के घोषित खर्चों के हिस्से भी जुड़े हैं। इन सबको मिलाकर कोरोना राहत प्रस्तुत कर दी गयी है। बस इस बात का ख्याल रखा गया है कि धनी व ताकतवर वर्ग के हित इस राहत योजना से प्रभावित न हो जाएं।

राहत की बड़ी मांग जनता को दी जाने वाली राहत की थी और ऐसी योजना बनाने की थी जो अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित कर सके। एक हद तक दोनों सवाल जुड़े भी हुए हैं। प्रवासी मजदूरों को दी जाने वाली राहत के लिए इसमें सिर्फ प्रति माह प्रति व्यक्ति 5 किलो गेहूँ और प्रति परिवार एक किलो चना दिया गया है वह भी सिर्फ 2 माह के लिए। वित्तमंत्री के आंकड़ों के अनुसार 8 करोड़ प्रवासी मजदूरों को 3500 करोड़ रुपये की आर्थिक राहत दी जानी है। यह प्रति व्यक्ति मात्र 437 रुपये बैठती है। एक बड़ा क्रूर मजाक सरकार ने यात्री भाड़े में 85 फीसदी सब्सिडी दिये जाने का किया है, जो असल में आम यात्री भाड़े में उसके द्वारा दी जाने वाली सामान्य सब्सिडी का उसका दावा है।

20.97 लाख करोड़ रुपये के पैकेज की घोषणा करते हुए प्रधानमंत्री ने भारत को दुनिया के विकसित देशों के समकक्ष खड़ा करने का दिखावा किया। इन देशों ने अपने सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 10 फीसदी राहत के रूप में खर्च करते हुए अपने सभी नागरिकों के खाते में जीने लायक पैसा हस्तारित किया है। भारत का कुल खर्च उसके

सकल घरेलू उत्पाद का 0.8 फीसदी से भी कम है। यही नहीं, जितना खर्च किया जा रहा है उससे कहीं अधिक धन सरकार ने जनता पर बोझ लादकर बटोर लिया है। मोदी सरकार ने पेट्रोल पर 10 रुपये और डीजल पर 13 रुपये प्रति लीटर की एक्साईज ड्यूटी बढ़ा दी, जबकि विश्व बाजार में कच्चे तेल के दाम धराशायी होते गए हैं। इससे 2.85 लाख करोड़ रुपये आएंगे। उसने सभी सरकारी कर्मचारियों और पेंशन पाने वालों की महंगाई भत्ते की 3 किश्तें काट ली जिससे, केन्द्र व राज्य कर्मियों को मिलाकर 1.2 लाख करोड़ रुपये सरकारों द्वारा बचाये गये। कुल 4 लाख करोड़ रुपये इस सरकार जमा किये। सांसद व विधायक निधि फण्ड काटा गया है।

दूसरी ओर बाजार में मांग बढ़ाने की कोई भी योजना पेश नहीं की गयी है। वास्तव में सरकार मांग की कमी को स्वीकार ही नहीं करती, जबकि यह कोरोना प्रकोप से पहले भी एक बड़ी समस्या बन चुकी थी। वह अब भी आपूर्ति बढ़ाने के अर्थशास्त्र के पक्ष में है, यानी पूंजी निवेश आकर्षित करने के। जब घरेलू मांग घट रही हो और निर्यात बढ़ाने की कोई गुंजाइश न हो तो यह रणनीति निश्चय ही विफल होगी। घरेलू मांग बढ़ाना भारत सरकार के चिंतन से कोसों दूर है क्योंकि इसके लिए उसे किसानों, खेत मजदूरों और औद्योगिक मजदूरों की क्रय क्षमता बढ़ानी पड़ेगी। सरकार ने केवल दिये जाने वाले कर्जों के ब्याज में कुछ राहत की बात कही है। स्पष्ट है इससे आर्थिक गतिविधियां विकसित नहीं होंगी। आखिरकार किस बाजार के लिए उत्पादन किया जाएगा?

राहत पैकेज में ये सभी कमजोरियां बहुत स्पष्ट हैं। फिर इसमें दिया क्या गया है? आधी घोषणा तो पहले की घोषणाओं की पुनरावृत्ति है, जो फरवरी से अप्रैल के बीच में की जा चुकी है। आरबीआई ने मौद्रिक तरलता बढ़ाते हुए व्यवसायिक बैंकों के हाथ में उपलब्ध धन बढ़ाया था और कर्ज सरते किये थे। इसकी कुल रकम 8 लाख करोड़ रुपये जोड़ी गयी है और इसमें सरकार खर्च का एक रुपया भी नहीं है। जाहिर है यह पैसा उद्योगों व अन्य व्यवसायियों को उधार के रूप में दिया जाना है। जहां बाजार खुद मंदी के दौर में है और मांग धराशाही हो रही है तो ये कर्ज अब वही 'कम्पनियां' लेंगी जो शुद्ध रूप से इस पैसे को गबन करने में माहिर हैं, जैसा कि आरएसएस-भाजपा के कई मित्र हैं। यह मूल्यांकन इस बात से भी साबित होता है कि मौद्रिक तरलता बढ़ाने के बाद बैंकों ने पहले की तुलना में आरबीआई के पास जमा अपना धन 3 लाख करोड़ रुपये (27 मार्च) से बढ़ाकर अप्रैल के अंत में 8.4 लाख करोड़ रुपये कर दिया जिससे वे रिजर्व बैंक द्वारा दिये जाने वाले ब्याज का लाभ उठा सकें। स्पष्ट है कि उसके पास कर्ज लेने वाले नहीं आ रहे हैं।

27 मार्च को वित्त मंत्री ने एक पैकेज और घोषित किया था। उसमें अगले 3 माह तक 61,380 करोड़ रुपये खर्च

किये जाने वाले थे। इसमें महिलाओं के जनधन खाते में 10,025 करोड़ रुपये दिये जाने थे और विधवाओं, वृद्धों और विकलांगों के लिए 2,807 करोड़ रुपये। इसमें किसानों के 16,394 करोड़ रुपये बजट में शामिल पीएम किसान योजना की पहली किश्त थी और निर्माण मजदूरों के लिए 31 हजार करोड़ रुपये थे, जो उनके कल्याण खाते का पैसा था। ये सारी घोषणाएं उस कहानी की याद ताजा करती हैं जब चोर को आते देख, एक व्यक्ति ने साथ चल रहे अपने मित्र को उसका पुराना उधार चुका दिया।

विश्लेषणकर्ताओं में इस बात की सहमति है कि राहत पैकेज का कुल खर्च देश के सकल उत्पाद के एक फीसदी से कम है। इसमें बहुत सारा खर्च वह भी जोड़ा हुआ है जो राजस्व कम होने के नाम पर खातों में जुड़ जाता है, जो काल्पनिक होता है। जो 5 किश्तें घोषित की गयीं उनमें पहली में 25,500 करोड़ का खर्च, दूसरी में 5,000 करोड़ का खर्च, तीसरी में 30,000 करोड़ का खर्च, चौथी में 8,100 करोड़ का खर्च और पांचवीं में 40,000 करोड़ का खर्च दिखाया गया है। यह अंतिम खर्च मनरेगा के 61,000 करोड़ रुपये में जोड़ा जाएगा। पर यहां भी आंकड़ों की तिकड़म स्पष्ट है क्योंकि पिछले साल मनरेगा में 71,000 करोड़ रुपये खर्च किये गये थे और इस साल मजदूरी की दर 20 रुपये प्रतिदिन बढ़ाई गयी है। ये दोनों मिलाकर इस अतिरिक्त रकम का आधा है और शेष वृद्धि कार्य दिनों में केवल 20 फीसदी वृद्धि कर पाएगी। अभी तक के दर्ज आंकड़ों में मनरेगा काम के आवेदन में 65 फीसदी वृद्धि दर्ज हो चुकी है। करीब से जोड़ें तो इस कुल पैकेज में जनता पर अतिरिक्त खर्च केवल 65,000 करोड़ रुपये है। आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि आरबीआई के पूर्व गवर्नर ने भी गरीबों पर खर्च के लिए इतनी ही रकम मांगी है। यह पूरी वर्जिश असल में एक दिखावा व धोखा है और इस वर्तमान सरकार के सड़े हुए जनविरोधी चरित्र को उजागर करता है।

इन घोषणाओं की पहली किश्त सूक्ष्म, छोटे व मध्यम उद्योगों को पुनर्जीवित करने के लिए की गयी थी। महत्वपूर्ण है कि इस तरह के सारे उद्योग मिलाकर, देश के कुल उत्पादन में 30 फीसदी योगदान करते हैं। यह कुल मैन्युफैक्चरिंग का 45 फीसदी हैं और देश के कुल निर्यात का 40 फीसदी है। ये उद्योग 11 से 12 करोड़ मजदूरों को रोजगार प्रदान करते हैं। ये औद्योगिक उत्पादन की रीढ़ हैं और बड़े उद्योगों को पुर्जों की आपूर्ति भी करते हैं। यह कोरोना से पहले भी संकट में थे और इस महामारी ने इन पर ताला लगा दिया है। डाक्टरों का वैसे भी कहना है कि कोरोना पहले से बीमारों को ही ज्यादा प्रभावित कर रहा है। एक तरह से शासक वर्गों को यह एक अच्छा मौका मिला है कि इस बहाने से वे अपने बीमार पक्ष को छुपा सकेंगे। उनका प्रयास है कि कोरोना के संकट की आड़ में वे व्यवस्था के संकट को छिपा ले जाएं, जबकि इसने उनके

संकट को और स्पष्टता से सामने ला दिया है। इस मूल्यांकन में इस बात का भी ख्याल रहना चाहिए कि उपभोक्ता मांग देश के कुल उत्पादन के 60 फीसदी को पूरा करती है और यह इस पुनर्जीवन में निर्णायक भूमिका अदा करेगी। पर सरकार इस बात की पूरी तरह से अवहेलना कर रही है। लॉकडाउन के समय से अब तक करीब 12 करोड़ मजदूर बेरोजगार हो चुके हैं जिनमें तीन चौथाई दैनिक वेतन भोगी हैं।

पहली किश्त एक कर्ज मेले की तरह थी - 3 लाख करोड़ कर्ज में और 70 हजार करोड़ कर्जों को टाले जाने और ब्याज में राहत के रूप में जोड़ी गयी। 2 फरवरी 2020 को जो कुल बकाया कर्ज था, उसका 20 फीसदी हिस्सा बिना जमानती सुरक्षा के नये कर्ज के रूप में लिया जा सकेगा, जो 4 साल में वापस करना होगा और पहले साल में कोई किश्त नहीं देनी होगी। देश के 45 लाख सूक्ष्म, छोटे व मध्यम उद्योगों (एमएसएमई) पर करीब 16 से 18 लाख करोड़ रुपये का कर्ज है और इसका 20 फीसदी 3 लाख करोड़ से कुछ ज्यादा है। इस फण्ड को नीरव मोदी फण्ड समझना गलत नहीं होगा क्योंकि बाजार के जो हालात हैं, उसमें वही इसे लेगा जिसका इसे वापस करने का कोई इरादा नहीं है। एमएसएमई की सीमाएं भी बदल कर बड़े मालिकों को इसमें शामिल कर लिया गया है।

मजदूरों के प्रॉविडेंट फंड को 12 फीसदी से घटाकर 10 फीसदी कर दिया गया है, जिसमें सरकार के साथ कर्मचारी भी 10 ही फीसदी जमा करेंगे। इस कटौती को भी मजदूरों का पक्ष बताया गया। जबकि यह मजदूरों का ही पैसा काटा जा रहा है। इसके अलावा इसमें ब्याज दर घटा कर और चोट पहुँचाई गई है।

गैर बैंकीय वित्तीय कम्पनियों, एनबीएफसी को भी, जो राजकीय धन की चोरी का मुख्य मार्ग रही हैं, 45 हजार करोड़ रुपये दिये गये हैं, जिसमें से उनको होने वाले घाटे के पहले 20 फीसदी हिस्से की क्षतिपूर्ति है और 30 हजार करोड़ पूर्ण गारंटी युक्त निवेश योजनाओं के लिए है। वित्तमंत्री ने 90 हजार करोड़ रुपये विद्युत क्षेत्र को पॉवर फाइनेन्स कारपोरेशन तथा क्षेत्रीय बिजली आयोग से दिये हैं और 50 हजार करोड़ रुपये इस बात के जोड़ लिये कि स्रोत पर जो टैक्स वसूला व एकत्र किया जाता है, यानी टीडीएस व टीसीएस, उसमें 25 फीसदी कटौती की गयी है। इस सबसे जाहिर है कि सरकारी सहयोग कुछ भी नहीं है और यह क्षेत्र पुनर्जीवित नहीं होगा।

दूसरी ओर वित्तमंत्री ने राज्यों द्वारा किये गये श्रम कानून में परिवर्तन लागू करने की घोषणा की जो मजदूरों के अधिकारों पर एक और हमला है। श्रम कानूनों में मजदूर-विरोधी परिवर्तन श्रम कोडों को अध्यादेशों के जरिये लाये जा रहे हैं और इनमें 12 घण्टे काम के दिन को मंजूरी दी गयी है जबकि काम के घण्टे घटा कर रोजगार के अवसर बढ़ाने की जरूरत है। ये सारे परिवर्तन अमल करने

का कारण भी यही बताया जा रहा है कि इससे रोजगार के अवसर बढ़ेंगे और इस तरह इसको मजदूरपक्षीय बताया जा रहा है। कई प्रान्तों ने इस दौर में, पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल, गुजरात, हरियाणा, राजस्थान व ओडिशा में ये परिवर्तन किए जा चुके हैं। आर्थिक पेकेज में लॉकडाउन अवधि का मजदूरों को भुगतान करने का कोई प्रावधान नहीं किया गया है। इसे मालिकों पर छोड़ दिया गया था और उनके द्वारा भुगतान किया जाना था। परंतु सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि लॉकडाउन अवधि के लिए भुगतान न करने पर मालिकों के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जा सकती। इस फैसले के बाद से सरकार के आदेशों से यह प्रावधान हटा लिया गया है। प्रवासी मजदूरों के मकान के किराये के लिए भी कोई प्रावधान नहीं है तथा बिना किसी फंड आबंटन के वित्तमंत्री ने प्रवासी मजदूरों को किराये पर मकान उपलब्ध कराने के लिए प्रधानमंत्री आवास योजना का ऐलान किया है। घोषणा में पटरी विक्रेताओं के लिए 5,000 करोड़ रुपये का कर्ज घोषित किया गया है और मध्यम श्रेणी के आवासों के लिए 70,000 करोड़ रुपये का। मोदी जी और निर्मला सीतारमन का दिल प्रवासी मजदूरों के लिए धड़का जरूर, पर थोड़े आराम के साथ।

दूसरी किश्त का बड़ा हिस्सा किसानों के लिए कर्ज का था, जिसमें 2 लाख करोड़ रुपये के केसीसी कर्ज पहले से कर्जदार किसानों के लिए घोषित किये। इसमें मात्र दो फीसदी ब्याज में कटौती की घोषणा की गयी है, जो यदि पुराने ब्याज में दी जा रही 3 फीसदी कटौती के अतिरिक्त है, तो कुल 4,000 करोड़ रुपये बँटेगी। यह कर्ज ग्रामीण धनी लोग व जमींदारों को काफी बल पहुँचाते हैं, जो इनसे मजबूती प्राप्त कर, भारी ब्याज पर गरीबों को कर्ज देते हैं और उनसे अतिरिक्त वसूली करते हैं। इसमें नाबार्ड के माध्यम से 30,000 करोड़ रुपये तत्कालिक खर्च के लिए कर्ज देने की घोषणा है जो देश के 11.8 करोड़ किसानों के लिए केवल लगभग 2500 रुपये प्रति परिवार बैठती है।

एक बड़ा धोखा आदिवासियों के साथ इसमें किया गया है, जिसमें 6 हजार करोड़ रुपये का कैम्पा का फंड वन क्षेत्रों से बाहर रोजगार स जन के लिए दिया गया है, जबकि यह फण्ड पुनःवनीकरण के लिए था। साथ में कोरोना के दौर में एससी/एसटी समाज के लिए आबंटित फंड में भी कटौती की गयी है और स्पष्ट है कि शासक कोरोना महामारी का इस्तेमाल उत्पीड़ित तबकों पर हमले बढ़ाने के लिए कर रहे हैं।

इन घोषणाओं में किसानों और आदिवासियों पर एक बड़ा हमला मोदी ने उस समय किया जब अपनी प्राथमिकताओं में जमीन के सवाल को जोड़ दिया। सभी लोग परिचित हैं कि शुरु से ही मोदी सरकार एलएआरआर 2013 को रद्द करने के प्रयास में लगी रही है, और राज्य संशोधनों के नाम पर काफी हद तक भूमि अधिग्रहण करने में गांव वालों के पुनर्वास और पर्यावरण को क्षति की जवाबदेही के

प्रावधान समाप्त किये जा चुके हैं। स्पष्ट है कि इसमें किसानों व आदिवासियों की जमीन, जल, वन व खनिज संसाधनों की खुली लूट अब बढ़ाई जाएगी।

तीसरी किश्त में कथित जोर ग्रामीण विकास योजनाओं पर था। 1 लाख करोड़ रुपये कृषि अर्थव्यवस्था पर, खेतों से खरीददारी व फसल सघनीकरण (एग्रीगेटर्स) केन्द्र बनाने, कृषि सहकारी समितियों, किसान उत्पादक संगठन, जो सब ज्यादातर भंडारण व खाद्यान्न प्रसंस्करण के लिए किया जाएगा। ये सब पुरानी योजनाएं हैं और इस सबमें भी कर्ज घोषित किया गया है।

खाद्यान्न प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना, आधुनिकीकरण व विस्तार के लिए पहले से ही 95 फीसदी कर्ज देने की योजना चल रही है। इसमें सूक्ष्म खाद्यान्न उद्योगों के लिए 10 हजार करोड़ रुपये अतिरिक्त घोषित किया है, वह भी कर्ज है। इसी तरह से मछुआरों के लिए 20,000 करोड़ रुपये मत्स्य सम्पदा के लिए, पशुओं की बीमारी के नियंत्रण के लिए 13,343 करोड़ रुपये की है, जो आबंटन एक पुरानी योजना का है जिसमें यह खर्च 2019 से 2024 के बीच किया जाना है। जाहिर है ये सभी खर्च किया जाना बेहद संदिग्ध हैं।

पशुपालन अधिरचना विकास के लिए भी 15 हजार करोड़ रुपये जोड़े गये हैं जो डेयरी प्रसंस्करण व मूल्य व दूध तथा पशु आहार के लिए पहले से ही घोषित है। इसे भी कोरोना राहत में जोड़ लिया गया है। साथ में मधुमक्खी पालन, हर्बल औषधि और कुछ सब्जी, फलों के लिए भी छोटी-छोटी घोषणाएं हैं।

इस घोषणा का सबसे गम्भीर पहलू है कि ये बाजारों पर सरकारी नियंत्रण समाप्त कर देंगी और टेका खेती शुरू कराकर किसानों को उनकी ही जमीन पर गुलाम बना देंगी। वित्तमंत्री ने आवश्यक वस्तु अधिनियम, कृषि उत्पाद, मार्केटिंग कानून, एपीएमसी (मंडी अधिनियम) में बदलाव कर टेका खेती का कानूनी आधार पेश किया है। एक ऐसे समय पर, जब पहले से ही किसान सरकारी लॉकडाउन से प्रभावित हैं, इन घोषणाओं का किया जाना, आरएसएस-भाजपा सरकार के वास्तविक लक्ष्य को दर्शाता है। कई आलोचकों ने कहा है कि कृषि पर इन संशोधनों का प्रभाव वैसा ही होगा जैसा 1991 में औद्योगिक क्षेत्र में हुआ था। मोदी सरकार खेती के उन क्षेत्रों में विदेशी पूंजी का प्रवेश करा रही है, जो अभी तक उसके हस्तक्षेप से बाहर थे।

वित्तमंत्री ने अन्तर्राज्यीय बिक्री को अनुमति देकर खाद्यान्न क्षेत्रों की सीमाएं समाप्त करने पर काफी जोर दिया। पर इसका किसानों को लाभ नहीं मिलेगा, क्योंकि वे दूर-दराज के बजारों में अपनी फसल नहीं ले जा सकते। इसका लाभ केवल व्यापारियों और जमींदारों के छोटे तबके को मिलेगा। स्टॉक पर लिमिट के हटने से जमाखोरों को छूट मिलेगी। इस सबसे सरकार भी फसल की खरीद की जिम्मेदारी से

पीछे हटेगी और न्यूनतम समर्थन मूल्य देने का प्रावधान पूरी तरह समाप्त कर देगी। यह किसानों पर बड़ा हमला है। जरूरत सभी फसलों- खाद्यान्नों, दालों, सब्जियों, फलों आदि के लिए स्वामीनाथन कमेटी की संस्तुतियों के आधार पर मूल्य तय कर सरकारी खरीद सुनिश्चित करने की है। वित्तमंत्री की घोषणा उपभोक्ताओं पर भी बड़ा हमला है क्योंकि जमाखोरी बढ़ने से हर सामग्री के दाम भी बढ़ जाएंगे।

जैसे-जैसे प्रस्तुति आगे बढ़ी वह और भी ज्यादा जनविरोधी और साम्राज्यवाद परस्त, कारपोरेट परस्त होती गयी। जहां एक तरफ मोदी सरकार ने लोगों को कोरोना से इस कदर भयभीत कर दिया है कि मानो ये कोई भूत है, जिससे मुकाबला नहीं किया जा सकता। इसी की आड़ में वह एक के बाद एक कारपोरेट पक्षधर फैसले लेती जा रही है - कोयला खदानों की नीलामी व अन्य खनिजों की ई-नीलामी तथा कोयला खदान कानून 2015 तथा माइन्स एण्ड मिनिरल कानून 1957 में संशोधन, जो इसमें बाधा बनी हुआ था। साथ में ओडिशा की तलचर खाद इकाई का निजीकरण भी घोषित किया गया है और ऊर्जा उद्योग व विद्युत वितरण कम्पनियों एवं 6 और हवाई अड्डों का भी। भारतीय वायु क्षेत्र को भी व्यवसायिक इस्तेमाल के लिए और अधिक खोला जाएगा। साथ में इसरो अंतरिक्ष अनुसंधान में और परमाणु ऊर्जा व परमाणु चिकित्सीय उपयोग में निजी क्षेत्र का प्रवेश बढ़ाया जाना है। ये घोषणाएं प्रश्न खड़ा करती हैं कि क्यों आरएसएस-भाजपा के नेता जमीन पर कोरोना से लड़ने की जगह अंतरिक्ष क्षेत्र का इतना निजीकरण कर रहे हैं?

अंतिम किश्त में सरकार ने मनरेगा में एक छोटी रकम बढ़ाने की घोषणा की, जो इस बात का ख्याल नहीं रखती कि करोड़ों लोग शहरों से गांव वापस आ रहे हैं और उनके लिए जीविका के साधन उपलब्ध कराए जाने जरूरी हैं। ना तो कोई जमीन आबंटन का प्रस्ताव है, न ही इन इलाकों के लिए उपयुक्त उद्योगों को बढ़ावा देने का।

पांचवीं किश्त में राज्यों द्वारा बैंक से उधार लेने की सीमा राज्य की सकल घरेलू उत्पाद के 3 फीसदी से बढ़ाकर 5 फीसदी की गयी है, पर इसमें यह शर्त जोड़ दी गयी है कि वे केन्द्र सरकार द्वारा घोषित कई कदमों पर अमल करेंगी। इन शर्तों में एक देश एक राशन कार्ड, व्यवसाय करने की सुगमता के कदम, विद्युत वितरण कम्पनियों का निजीकरण और स्थानीय निकायों के राजस्व से सम्बन्धित प्रस्ताव हैं। यदि ये शर्त ना मानी जाएं तो इस उधार का एक चौथाई हिस्सा ही राज्य सरकारें ले पाएंगी। ये शर्तें निश्चित तौर पर देश के संघीय ढांचे पर एक हमला हैं और राज्य सरकारों के अधिकारों पर चोट करती है। महत्वपूर्ण है कि दिसम्बर 2019 से राज्य सरकारों को जीएसटी का उनके हिस्से का भुगतान नहीं किया गया है।

मोदी सरकार ने ये सारे सुधार 'आत्मनिर्भर भारत' के निर्माण के नाम पर किये हैं। इसमें जनता के लिए बहुत सारे जुमले हैं और दूसरी ओर बहुत सारे क्षेत्र विदेशी कम्पनियों के निवेश के लिए खोले गये हैं। इसमें भारत सरकार खुलेआम अमेरिकी साम्राज्यवाद के पक्ष में खड़ी है जिसके चीन के साथ अन्तर्विरोध बढ़ रहे हैं। विदेशी निवेश के लिए वे क्षेत्र और ज्यादा खोले गये हैं जिसमें पश्चिमी पूंजी को रुचि है और हमला उन क्षेत्रों पर ज्यादा किया गया है जो चीन से आयात पर निर्भर हैं। याद रहे कि पिछले साल जब आरसीईपी का समझौता हस्ताक्षरित करने से सरकार पीछे हटी थी, वह भी अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरोध के साथ जुड़ा था और अमेरिकी सरकार द्वारा आरसीईपी के खुले विरोध करने के बाद ही ऐसा किया गया। जिसे आरएसएस-भाजपा 'आत्मनिर्भरता' कहती है उसका भारत के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह अमेरिका तथा उसके सहयोगियों पर और अधिक निर्भरता को आत्मनिर्भरता का जामा पहनाकर पेश कर रही है।

विदेशी पूंजी को आमंत्रित करने के लिए सरकार ने न केवल श्रम कानून व करों के कानून में कटौती की है, उसने बहुत सारी जांच से भी उन्हें छूट दे दी है। उन्हें उम्मीद है कि अमेरिका व चीन के बीच में कोरोना महामारी के बाद बढ़ रहे अन्तर्विरोधों के ज्यादा तेज होने से अमेरिकी कम्पनियों व उनकी सहयोगी देशों की कम्पनियां भारत में निवेश करेंगी। इनके लिए मजदूरी का रेट सस्ता करना एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। पर इन कम्पनियों के आकर्षण में अधिरचना भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसकी हालत भारत में चीन की तुलना में कम अच्छी है। अगले 5 से 10 साल के बीच ऐसी उम्मीद की जा रही है कि चीन दुनिया का सबसे बड़ा बाजार बन जाएगा। यहां उल्लेखनीय है कि अमेरिकी

व पश्चिमी देशों की कम्पनियां निवेश के लिये वियतनाम के प्रति ज्यादा आकर्षित हैं, भले ही भारतीय दलाल इनकी आस लगाए बैठे हैं।

विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए लालायित भारत सरकार जहां श्रम कानूनों में परिवर्तन, खेती व फुटकर व्यापार तथा अन्य सभी क्षेत्रों को खोलने की ओर आगे बढ़ी है, वह जनता पर खर्च को बढ़ाकर अपने वित्तीय बोझ को नहीं बढ़ाना चाहती। इससे उसका क्रेडिट दर्जा खराब हो जाएगा। वैसे भी भारत का बैंकिंग क्षेत्र काफी संकट से गुजर रहा है और स्थिति को सुधारने के लिए अगर सरकारी खर्च बढ़ाया जाएगा तो ये संभव है कि इससे विदेशी निवेशक घबड़ाकर पीछे हट जाएंगे। स्पष्ट है कि भारत ना तो आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहा है, ना ही भारत सरकार अपनी जनता की समस्याओं को हल करने के लिए आगे बढ़ रही है।

इन पांच किशतों की घोषणाओं से पहले अपने परिचयात्मक बयान में मोदी ने 5 स्तम्भों की बात कही थी, जिनमें अर्थव्यवस्था में गुणात्मक छलांग, आधुनिक अधिरचना, तकनीकी द्वारा संचालित तंत्र, जीवन्त जनसांख्यिकी और विश्व आपूर्ति श्रृंखला का हिस्सा बनना। दिमाग पर बहुत ज्यादा जोर लगाने पर भी इन स्तम्भों में कहीं कोरोना से मुकाबले का कोई सूत्र नहीं नजर आता। इनमें से जो आखिरी स्तम्भ है इसके लिए चीन के स्थान पर अमेरिका व उसके पश्चिमी सहयोगियों की पूंजी आकर्षित करने के लिए पहले से ही भारतीय शासक तेजी से प्रयासरत रहे हैं। जहां तक जीवन्त जनसांख्यिकी का सवाल है, ये केवल एक नारा उछाला गया, पर इसकी सच्चाई भारत के राजमार्गों पर चल रहे प्रवासी मजदूरों की दुर्दशा के रूप में, हर जगह लोग देख पा रहे हैं।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (माक्सवादी-लेनिनवादी) के प्रकाशन

न्यू डेमोक्रेसी	(अंग्रेजी)
प्रतिरोध का स्वर	(हिन्दी)
वायस ऑफ न्यू डेमोक्रेसी	(तेलुगु-तेलंगाना)
न्यू डेमोक्रेसी बुलेटिन	(तेलुगु-आंध्र प्रदेश)
विप्लवी गण लाइन	(बंगला)
इंकलाबी साडा राह	(पंजाबी)
संग्रामी एकता	(ओडिया)

मोदी जी ने देशवासियों से कहा है कि जान है तो जहान है। उनका असली मतलब है आरएसएस-भाजपा के राज में जनता को जान बचने के लिए भी सरकार का आभारी होना चाहिए। कोरोना संकट ने शासक वर्गों को हिला तो दिया है लेकिन अधिक जोर से नहीं। उन्हें हिलाने का काम वैसे भी कोरोना नहीं कर सकता। इसके लिए जरूरी है कि लोग संगठित हों, संघर्ष में उतरें और इस काम को आगे बढ़ाने के लिए क्रांतिकारी संगठन व संघर्ष पक्षधर ताकतें सामने आएँ।

नक्सलबाड़ी द्वारा दिखाया गया रास्ता देश की जनता मुक्ति का रास्ता है

इस साल, नक्सलबाड़ी दिवस, 25 मई, ऐसे समय पर आया है जब कोरोना महामारी का लाभ उठाकर सरकार भारत के लोगों पर अनकही पीड़ा थोप रही है, जिसकी वजह से वे अभूतपूर्व कठिनाईयों का सामना कर रहे हैं। आम लोगों के जीवन के सभी कामों को बलपूर्वक रोक दिया गया है, जबकि जनवादी अधिकारों पर हमलों को तेज कर दिया गया है; क्रूरता के साथ मजदूरों द्वारा जीते गये अधिकारों पर हमला शुरु किया गया है; किसानों व खेती पर हमला किया जा रहा है और ज्यादा व्यापक ढंग से कारपोरेट नियंत्रण को बढ़ावा दिया जा रहा है, जबकि करोड़ों की संख्या में प्रवासी मजदूरों की घोर उपेक्षा ने शासक वर्गों के असली चरित्र को स्पष्ट कर दिया है। यह लॉकडाउन देश की मेहनतकश जनता के विशाल बहुमत की कीमत पर उच्च व उच्च मध्यम वर्ग की रक्षा के लिए थोपा गया था।

इस साल नक्सलबाड़ी दिवस ऐसे समय पर आया है जब दसियों लाख मजदूर पैदल चलकर अपने गांव पहुँचे हैं और अब भी चल कर वापस जा रहे हैं। ये मजदूर, भूमिहीन गरीब किसान, खेत मजदूरों और कुछ मध्यम किसान परिवारों के लोग हैं। ग्रामीण भारत, जहां अन्तर्विरोधों की भट्ठी गरम रही है, लम्बे समय से तेज संघर्ष और क्रांतिकारी आन्दोलनों का क्षेत्र रहा है। भारत के बड़े पूंजीपतियों व बड़े जमींदारों, जो साम्राज्यवाद के अधीनस्थ हैं और 1947 में सत्ता में आए, के राज के खिलाफ ग्रामीण भारत ही मुख्य रणभूमि रही है। ग्रामीण भारत में, जहां जनता की प्रचण्ड बहुसंख्या जीवन व्यतीत करती है और अब भी जहां लगभग 70 फीसदी भारतवासी रहते हैं, क्रांतिकारी किसान आन्दोलन की धारा लगातार बहती रही है। जहां भारत में किसान विद्रोहों का लम्बा इतिहास रहा है, तेलंगाना हथियारबंद संघर्ष (1946 से 1951) मजदूर वर्ग के नेतृत्व में भारतीय किसानों का पहला हथियारबंद संघर्ष था, जो 5 साल तक चला और एक बड़े क्षेत्र में फैला। इस संघर्ष के साथ सीपीआई के नेतृत्व ने विश्वासघात किया और हथियारबंद कृषि क्रांति को संसदवाद के दलदल में डुबोने का प्रयास किया। नक्सलबाड़ी किसान हथियारबंद संघर्ष, तेलंगाना हथियारबंद संघर्ष द्वारा दिखाए गये रास्ते की पुनर्स्थापना थी और देश के कई ग्रामीण हिस्सों में इसने क्रांति की ज्वाला फैलाने का काम किया। यह भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ बन गया, जिसने क्रांतिकारियों और संशोधनवादियों व नवसंशोधनवादियों के बीच विभाजन की स्पष्ट रेखा खींच दी।

नक्सलबाड़ी, भारत की मुक्ति के लिए हथियारबंद संघर्ष के रास्ते का, भारत में नवजनवादी क्रांति करने के लिए

प्रतीक रहा है और आज भी है। यह एक तथ्यगत बात है कि भारत में जनता का हथियारबंद संघर्ष हथियारबंद कृषि क्रांति का रूप और दीर्घकालिक लोकयुद्ध का रास्ता अपनाता है। नक्सलबाड़ी ने मजदूर वर्ग जिसके नेतृत्व में नवजनवादी क्रांति का झंडा बुलंद किया जिसकी मुख्य ताकत किसान हैं।

भारत के शासक वर्गों ने क्रांतिकारी किसान आन्दोलन पर अभूतपूर्व दमन शुरु किया और जनवादी अधिकारों को दबाने तथा संघर्षरत लोगों के खिलाफ राजकीय हिंसा करने में नए कीर्तिमान स्थापित किये। जहां ये शासक वर्गों की मुख्य प्रतिक्रिया थी, उन्होंने लोगों के बीच में भ्रम पैदा करने का भी प्रयास किया और इस तरह से भूमि सुधार का दूसरा चरण सामने आया। यही नहीं, ग्रामीण युवाओं की बड़ी संख्या, खासतौर से गरीब किसान और खेत मजदूरों से, शहरों में काम करने के लिए गए। हालांकि यह उतना बड़ा नहीं था कि इससे शोषित व उत्पीड़ित किसान जनता की पीड़ा में कोई गुणात्मक परिवर्तन आता, इसने संकट के दबाव में एक सेफ्टी वाल्व का काम जरूर किया और कई क्षेत्रों में शिक्षित युवा शहरों की ओर पलायन कर गये। इन मजदूरों की, विशेषकर युवाओं की गांवों में वापसी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था व सामाजिक जीवन में निश्चित तौर पर दबाव बढ़ायेगी। इसका देश के बड़े हिस्सों में ग्रामीण क्षेत्रों के संघर्षों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा, हालांकि शहरों में मजदूर वर्ग के संघर्षों पर भी इसकी छाप रहेगी। रोजगार और जमीन के लिए एवं ग्रामीण पिछड़ेपन तथा वहां विकास के अभाव के खिलाफ यह संघर्षों की उर्वरक जमीन पैदा करेगा और वहां के संकट को बढ़ा देगा।

ग्रामीण भारत में आज भी जमींदारों व ग्रामीण अमीरों का वर्चस्व है। ग्रामीण जीवन में परिवर्तन हुए हैं, फिर भी इनका चरित्र मात्रात्मक है। इन परिवर्तनों ने पुराने तनाव के बिन्दुओं को गहरा कर दिया है और कुछ नए भी खड़े कर दिये हैं। शासक वर्गों के खिलाफ ग्रामांचल में संघर्षों का चरित्र पहले से ज्यादा बहुआयामी हो गया है। पर वह आज भी जमींदारों, सूदखोरों और अन्य व्यवसायिक हितों के खिलाफ केन्द्रित है। यद्यपि संघर्ष के बहुत से सवाल का महत्व बढ़ गया है, जहां तक ग्रामीण जीवन को बदलने का सवाल है, जमीन आज भी संघर्ष का सबसे महत्वपूर्ण सवाल है। ग्रामीण भारत में सत्ता का हस्तांतरण नहीं हुआ है, वहां केवल जमींदारों के शोषण करने के तरीकों में वृद्धि हुई है और जमींदारों के पारम्परिक सहयोगी, सूदखोरों के साथ अब व्यवसायिक हित भी जुड़ गये हैं। इन तबकों ने सरकारी योजनाओं के बड़े हिस्से पर कब्जा किया हुआ है और यह ग्रामीण इलाकों में व्यापारियों के साथ मिलकर, जो व्यवसाय

बढ़े हैं, उन्हें भी नियंत्रित करते हैं। जमीन आज भी ग्रामीण इलाकों में ताकत का प्रतीक बनी हुई है और सबसे अमीर 14 फीसदी लोगों का तीन चौथाई धन जमीन है। भूमि की मिल्कियत, जो अर्द्धसामंती शोषण का आधार है, के साथ मालिकाना व शोषण के अन्य रूप जुड़ गये हैं और ये सभी एक छोटे से हिस्से के हाथों में केंद्रित हैं, जिसमें ऊपर के दो फीसदी लोग 25 फीसदी खेती की जमीन के मालिक हैं और ऊपर के 7 फीसदी 47 फीसदी जमीन के मालिक हैं। तथ्य यह है कि हाल के वर्षों में, जमींदारों, सूदखोरों व व्यापारियों की जमीन में वृद्धि हुई है। दूसरी ओर ग्रामीण जनता के निचले आधे हिस्से की मिल्कियत में जमीन का हिस्सा मात्र 0.4 फीसदी बचा है, जिसके चलते ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन लोगों की संख्या बढ़ गयी है, जो ज्यादातर खेत मजदूर हैं। सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण 2011 के अनुसार 56 फीसदी ग्रामीण लोगों के पास केवल आवास की जमीन है।

किसानों का शोषण और उत्पीड़न कई तरीकों से जारी है। जहां पुराने रूप चल रहे हैं, नए तरीके जुड़ते जा रहे हैं। खेती में बटाईदारी काफी ज्यादा है, हालांकि यह कागजों में दर्ज नहीं की जाती, क्योंकि ज्यादातर ग्रामीण इलाकों में बटाईदारी ढंग से दर्ज नहीं है। इसकी व्यापकता को एनएसएस के आंकड़े भी दर्ज नहीं करते क्योंकि ये ज्यादातर मौखिक सौदे होते हैं। इसके कुछ उदाहरण देखें : के. रंगाराव कमेटी ने 2006 में बताया था कि तब के संयुक्त आंध्र प्रदेश में यह 50 फीसदी तक थी; बिहार में एक आयोग के अध्यक्ष डी. बंदोपाध्याय ने बटाईदारी को एक तिहाई (35 फीसदी) बताते हुए आंकड़ों के ना होने का दुखड़ा रोया था। तटवर्ती ओडिशा में व्यापक बटाईदारी की जानकारी आम है। इसी तरह से देश के प्रमुख हिस्सों में बटाईदारी बहुत ज्यादा व्यापक है, हालांकि गरीब किसानों व खेत मजदूरों का शोषण तरह-तरह के अन्य रूपों से भी किया जाता है। ग्रामांचल का वर्तमान दृश्य दिखाता है कि देश की मुक्ति के लिए नक्सलबाड़ी द्वारा दिखाया गया रास्ता आज भी प्रासंगिक है।

उत्पादन के साधनों की, जिनमें ग्रामीण भारत में जमीन मुख्य है, विषम मिल्कियत देश में जारी जातीय उत्पीड़न की भी जड़ में है। हाल के सालों में जाति उत्पीड़न के खिलाफ संघर्षों में वृद्धि हुई है, पर उनमें से ज्यादातर, उत्पादन के साधनों की मिल्कियत के सवाल पर केंद्रित नहीं हैं। परन्तु कुछ संघर्ष इस सवाल पर केंद्रित हुए हैं, जो सवाल जाति उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष का अविभाज्य अंग हैं। यहां नक्सलबाड़ी का संघर्ष और उसका अर्द्धसामंती उत्पीड़न को समाप्त करने तथा भूमि का वितरण करने पर जोर, जाति उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष के लिए आज भी जरूरी है।

इसी तरह से जमीन से बेदखल किये जाने के खिलाफ

आदिवासियों के संघर्षों ने, जो उन पर हमलों की जड़ में हैं, नक्सलबाड़ी द्वारा दिखाए गये रास्ते के अनुसार कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के नेतृत्व में चल रहे संघर्षों से प्रेरणा ली है और वे उनका अहम हिस्सा रहे हैं। वे आज भी मुख्यतः कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के नेतृत्व में संघर्ष कर रहे हैं।

नक्सलबाड़ी दिवस ऐसे समय पर मनाया जा रहा है जब केन्द्र में और ज्यादातर राज्यों में शासन कर रहा तंत्र देश पर फासीवादी हमला कर रहा है। यह ऐसे समय पर आया है, जब किसानों और मजदूरों, सभी मेहनतकश तबकों पर हमले चरम सीमा तक तेज किये जा रहे हैं और शासक तंत्र साम्राज्यवाद और घरेलू प्रतिक्रियावादी शासक वर्गों, बड़े पूंजीपति और बड़े जमींदारों की सेवा के प्रति बेशर्म और निर्लज्ज हो गये हैं। यह ऐसे समय आया है जब अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों पर अभूतपूर्व हमला करते हुए शासनतंत्र आरएसएस के हिन्दू राष्ट्र के सपने को थोपने की ओर आगे बढ़ रहा है, जो वास्तव में साम्राज्यवाद और प्रतिक्रिया की सेवा में उच्च जाति अहंकारवाद है। यह, भारत की जनता की उन सभी आकांक्षाओं, जो भारत की जनता के उपनिवेश विरोधी संघर्षों के क्रम में सूत्रबद्ध हुई थीं, के विरोधी हैं।

जो नक्सलबाड़ी के रास्ते को सही मानते हैं, उनका यह दायित्व है कि वे संघ फासीवाद के खिलाफ संघर्ष को क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए जनता के आन्दोलन के निर्माण के साथ जोड़ें। जनता का व्यापक बहुमत - किसान व मजदूर- क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए भी और आरएसएस-भाजपा के फासीवादी हमले के खिलाफ भी, संघर्ष की मुख्य ताकत हैं।

आने वाली स्थिति में किसान जनता के संघर्ष एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे। कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को इस संघर्ष में अपनी भूमिका को बढ़ाने के लिए पहलकदमी लेनी चाहिए और अपनी ऊर्जा इसमें लगानी चाहिए; इसको आगे विकसित करने के लिए अपने पूरे ध्यान व ऊर्जा को, किसानों के सतत प्रतिरोध के क्षेत्रों के निर्माण के लिए लगाना चाहिए - यह प्रतिरोध आरएसएस-भाजपा के मंसूबों के खिलाफ एक मजबूत आधार का काम करेगा और निराशा व समर्पण की भावना को परास्त करने में निर्णायक साबित होगा। यह संघर्ष मुख्य रूप से संसदीय क्षेत्र के बाहर लड़ा जाएगा। यह चुनौती कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के लिए, जो नक्सलबाड़ी के रास्ते के अनुयायी हैं, एक अवसर है।

वर्ग संघर्ष को सामाजिक उत्पीड़न और फासीवादी ताकतों के हमलों के खिलाफ संघर्ष के साथ जोड़ो!

क्रांति ही भविष्य है (नक्सलबाड़ी इसका रास्ता है!)

मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओत्सेतुंग विचारधारा जिन्दाबाद!

1857 : आज के संघर्षों के लिए प्रासंगिक है।

(यह लेख पार्टी के अंग्रेजी मुखपत्र न्यू डेमोक्रेसी के मई अंक में प्रकाशित आवाहन का हिन्दी अनुवाद है। यह आवाहन भा.क.पा.(माले) - न्यू डेमोक्रेसी की केन्द्रीय कमिटी द्वारा 1857 के महान संग्राम के शुरुआत की वर्षगांठ की पूर्व संध्या पर 9 मई 2020 को जारी किया गया था।)

10 मई 1857 को जब मेरठ से सिपाहियों ने विद्रोह करके दिल्ली कूच किया और अंग्रेजों को वहां से खदेड़ कर बादुरशाह जफर को बादशाह घोषित किया, वह भारत की स्वतंत्रता के प्रथम युद्ध की शुरुआत थी। इस युद्ध की लपटें बहुत दूर तक फैलीं। इसके बारे में सभी देशभक्त व प्रगतिशील तबके काफी कुछ जानते हैं।

आज भी ऐसे कुछ पहलू जो बहुत प्रासंगिक हैं, उनकी प्रतिध्वनि 1857 के युद्ध में सुनाई पड़ती है। पहला यह कि यह औपनिवेशिक शासन को उखाड़ फेंकने का प्रयास था। यह एक विदेशी हुकूमत के खिलाफ, जिसने देश को गुलाम बना लिया था, भारतीय जनता द्वारा एक साझा संघर्ष खड़ा करने की शुरुआत थी। उसने औपनिवेशिक लूट और दोहन के लिए भारत का शोषण किया था और इस लूट को इंग्लैण्ड भेज दिया था, जिसके आधार पर वह पृथ्वी पर, उस समय की सबसे बड़ी ताकत के रूप में उभर कर आ गयी और यूरोप के पूंजीवादी देशों में सबसे आगे बढ़ी हुई ताकत के रूप में विकसित हो गयी थी। दूसरा, यह सभी समुदायों व धर्मों को मानने वाले लोगों का एकतबद्ध संघर्ष था। सभी धर्मों के लोग, जिनमें दो सबसे बड़े समुदाय - हिन्दू व मुस्लिम साथ थे, ने इस संघर्ष में भाग लिया। यह किसी आपसी सहिष्णुता की नहीं, बल्कि साझी आकांक्षाओं की धर्मनिरपेक्षता थी। एक और महत्वपूर्ण पहलू था सामन्ती राजकुमारों का गायब होना, जो विदेशी शासन से स्वतंत्रता चाहते थे और अखिल भारतीय स्तर पर दावेदारी करने में किसानों की ताकत का उदय। 1857 पहला संघर्ष था जिसमें ज्यादातर किसानों ने खुद-ब-खुद भाग लिया था और यह औपनिवेशिक शासन के खिलाफ पुराने युद्धों से अलग था, जो सामन्ती राजाओं ने लड़े थे। यह औपनिवेशिक राज के खिलाफ पहला देशव्यापी युद्ध था, हालांकि इससे ठीक पहले औपनिवेशिक शासन के खिलाफ स्थानीय विद्रोह और युद्ध कई स्थानों पर हुए थे।

163 साल बाद बहुत कुछ बदल गया है। सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन है कि 1947 में प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन समाप्त हो गया है। इसमें पुराने भारत के तत्कालिक शासक वर्गों के हाथ में सत्ता का हस्तांतरण किया गया और इसका दो हिस्सों में, भारत और पाकिस्तान, विभाजन कर दिया गया। ये शासक वर्ग जो सत्ता में आए, वही वर्ग थे, जो औपनिवेशिक शासन की सामाजिक और आर्थिक बैसाखी थे, यानी बड़े जमींदार और दलाल पूंजीपति। उनका 70 साल का शासन भारतीय लोगों के लिए विशुद्ध तबाही का

दौर रहा है। हालांकि आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक ढांचे में कुछ परिवर्तन हुए हैं, ये उनके शासन को मजबूत करने के लिए किये गये, ना कि भारतीय जनता के हालातों में सुधार करने या भारतीय समाज में कोई मौलिक परिवर्तन लाने के लिए। भारत आज भी बड़े देशों में सबसे पिछड़ा देश है, खासतौर से अगर व्यापक भारतीय जनता के हाल को देखा जाए। इस व्यवस्था के पक्षधर और प्रवक्ता प्रगति की बात करते समय, घटने वाले हर कदम का श्रेय लेने का प्रयास करते हैं, मानो दिन-रात का होना, यानी इस धरती का चक्र होना भी, उन्हीं की वजह से है। वे बताते हैं कि क्या-क्या हुआ, ये नहीं बताते यदि स्वतंत्रता वास्तविक होती और औपनिवेशिक राज के सहयोगी, यानी प्रतिक्रियावादी उखाड़ दिये जाते और असली आजादी प्राप्त होती, तब क्या-क्या हो सकता था।

आज भारत दुनिया के सबसे ज्यादा गरीब, भूखे, दरिद्र, कुपोषित और सीमा पर ढकेले हुए लोगों का देश है। हम सक्रामित रोगों और उन बीमारियों में, जो दुनिया के बड़े हिस्से से समाप्त की जा चुकी हैं, की अति महाशक्ति हैं और इनके कारण आज भी बहुत सारी मौतें देश में होती हैं। अन्य पहलुओं की तरह हमारे पास दोनो दुनिया की सबसे खराब बातें मौजूद हैं - पुराने के जीवित बचे रहने और जारी रहने के कारण समस्याएं भी हैं और नई समस्याएं भी हैं। कोरोना महामारी की यद्यपि शुरुआत बाहर हुई है, आज यह भारत की उर्वरक जमीन पर फैल रहा है, जिसे बेरहमी और अपराधिक ढंग से बरबाद किया गया है। जब हम अन्य देशों के लोगों की तस्वीरें देखते हैं, जिन्हें भारतीय मीडिया बेतहाशा गरीबी और कुपोषण के उदाहरण के रूप में दिखाता है, जैसा कि उत्तर कोरिया, सीरिया, ईरान और अफ्रीका तक के, तब यह सोचने पर हम विवश होते हैं कि भारत में भी ऐसे हालात क्यों नहीं हैं। यह बात सच है कि भारत में बड़ी संख्या में तथा विकसित हो रहे अरबपति मौजूद हैं, पर इससे कहीं ज्यादा गति से दरिद्र और बेरोजगार, गरीब और भूखे लोग बढ़ रहे हैं। ये दोनो ही भारत में सत्ता के हस्तांतरण का नतीजा हैं।

बेतहाशा गरीबी और तीव्र विवशता इस वर्तमान कोरोना महामारी में भी प्रदर्शित है जहां करोड़ों की संख्या में, दुनिया के ज्यादातर देशों की कुल संख्या से अधिक लोग भारत के रेगिस्तान, जंगलों व मैदानी इलाकों से पैदल चलने को मजबूर हो गये हैं। वे भूखे हैं और बीमार हैं, उनका ख्याल नहीं रखा जा रहा है और वे अवांछित हैं, यह

भारत के शासक वर्गों के चरित्र को दिखाता है। वे इन्हें भोजन और आश्रय भी नहीं दे सके, वेतन और बेरोजगारी की बात तो दूर रही। ये सरकारें इन लोगों को आने से रोक रही हैं, वहीं रहने के लिए मजबूर कर रही हैं और दास श्रमिकों की सबको याद दिला रही हैं उनका व्यवहार गरीब विरोधी कानूनों के तहत चलने वाले व्यवहार से भी खराब है, जहां कम से कम खाना और आश्रय तो मिलता है।

जहां लोग इतनी सारी कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं, शासक चीन से अमेरिका की कम्पनियों को भारत में बुलाने का सपना देख रहे हैं। ये चापलूस, जो आर्थिक और सामाजिक प्रबुद्ध लोगों के बहुत ही सीमित हिस्से के लगातार जारी कब्जे के कारण सत्ता में पहुँच गये हैं, साम्राज्यवाद के लाभों को छोड़कर देश के भविष्य के बारे में सोच पाने की क्षमता ही नहीं रखते। वह कितना और बढ़ जाए, वही उनके लिए अच्छा है। जहां भारत बचाव तथा जांच सामग्री की कमी से पीड़ित है, वे अपने साम्राज्यवादी आकाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ज्यादा उत्सुक हैं। उनमें भारत को आगे ले जा पाने की क्षमता ही नहीं है। 1857 में जो संघर्ष शुरु हुआ था उसका आधार अभी भी समाप्त नहीं हुआ है। भारत को आज भी साम्राज्यवाद के प्रभुत्व से और साम्राज्यवादी पूंजी की जकड़न से तथा उनके दलालों से मुक्त किया जाना जरूरी है।

अंग्रेज औपनिवेशिक शासकों ने खासतौर से 1857 के बाद, साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के हथियार को बढ़ावा दिया और यह उनके औपनिवेशिक शासन का एक महत्वपूर्ण औजार बना। उन्होंने इन दोनो धार्मिक समूहों के बीच घणा के बीज बोए, जाहिर है दोनो के प्रबुद्ध तबकों के सहयोग से ही, जिसके लिए उन्होंने उनकी खुशामद भी की और उन्हें लालच भी दिये। यह घणा और विकसित हुई है या कहिए पतित होकर धार्मिक राष्ट्रवाद में बदल गयी है। भारत में आरएसएस-भाजपा का सत्ता में आना इसी प्रक्रिया की पराकाष्ठा है। ये शासक, कोरोना महामारी के तेज होने के दौर में भी मुसलमानों के खिलाफ अपनी साम्प्रदायिक साजिशों को चला रहे हैं, ताकि समाज का और ध्रुवीकरण हो और उनके कुशासन के खिलाफ विरोध ध्वस्त हो जाए। 1857, लोगों से, अपनी सामान व साझी नियति का निर्माण करने के लिए एकता की पुकार कर रहा है, एक ऐसा उन्नत और जवाबदेह भविष्य बनाने का, जिसमें आपसी विभाजन और सामाजिक उत्पीड़न न हो। भारत को जिस तरह की धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता है, 1857 उसका आदर्श है।

इसलिए आश्चर्य नहीं होता कि बहादुरशाह जफर आज भी म्यांमार में दफन हैं, वे अपनी मात भूमि में आज भी दो गज जमीन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। पर शासक वर्ग उपनिवेशवाद के विरुद्ध और धर्म निरपेक्षता के इस प्रतिबिम्ब

को भी खतरा समझते हैं।

आज का लोगों का संघर्ष 1857 से आगे बढ़ चला है। 1947 से बड़े पूंजीपति और बड़े जमींदारों के शासन ने लोगों की परेशानियों को बढ़ाया है। उन्होंने लोगों के संघर्ष के दायरे तथा उसके निशानों को बदला है। स्थिति ज्यादा जटिल हो गयी है। फिर भी औपनिवेश विरोध तथा धर्मनिरपेक्षता के लिए, 1947 एक प्रारूप के रूप में प्रासंगिक है। किसानों के संकट ने स्वतंत्रता के पहले युद्ध की शुरुआत की थी। वे ही, नवजनवादी भारत के लिए, जो भारत को एक उन्नत व समाजवादी भविष्य में ले जाएगा, संघर्ष की मुख्य ताकत हैं।

(भाकपा (माले) न्यू डेमोक्रेसी की केन्द्रीय कमिटी द्वारा जारी आवाहन का अंग्रेजी मूल से भावानुवाद)

पत्रिका के सभी पाठकों से अनुरोध

- ❖ लाक डाउन के कारण पत्रिका का पुराने रूप में प्रकाशन सम्भव नहीं है। तथापि आज पाठकों को वर्तमान स्थिति से अवगत कराना और भी जरूरी है। हम पत्रिका के ई-संस्करण के प्रकाशन के जरिये जहां तक संभव है इस जरूरत को पूरा करने की कोशिश करेंगे। इसके लिए हमें आपके सहयोग की अत्यधिक आवश्यकता है।
- ❖ साथियों तक पत्रिका पहुंचाने के लिए साथी ईमेल तथा व्हाट्सएप का इस्तेमाल करें। जो साथी इनके इस्तेमाल से परिचित न हों कार्यकर्ता उन्हें पत्रिका में प्रकाशित लेखों, रिपोर्टों तथा सामग्री से अवगत करायें।
- ❖ पत्रिका के लिए हमें लेख व रिपोर्ट नियमित रूप से भेजें। मौजूदा समय में इसकी जरूरत और बढ़ गयी है।
- ❖ पत्रिका के इस्तेमाल करने का प्रयास करें। स्वयं भी पढ़ें और अधिक से अधिक लोगों को भेजें।
- ❖ पत्रिका के बारे में अपने सुझाव भेजें।
- ❖ पत्रिका के सहयोग के लिए राशि जमा करें।

बर्नी सैंडर्स डेमोक्रेटिक पार्टी के प्रत्याशी के लिए चुनाव से हटे

शासक वर्ग की राजनीति में जन सरोकारों की अभिव्यक्ति की सीमाएं

‘बुर्जुआ समाजवाद तभी पर्याप्त अभिव्यक्ति प्राप्त कर पाता है जब, और केवल जब, यह मात्र एक अलंकार बनकर रह जाता है’। (कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र)

8 अप्रैल को, बर्नी सैंडर्स ने आगामी नवम्बर 2020 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में डेमोक्रेटिक पार्टी के उम्मीदवार बनने के लिए अपने अभियान को स्थगित करने की घोषणा की। आयोवा, न्यू हैम्पशायर और नेवादा को पहले तीन राज्यों की प्राथमिकियों में एक अगुवा के रूप में उभरने के साथ ही उनका अभियान समाप्त होना शुरू हुआ। उनके कई प्रतिद्वंद्वियों ने, एक के बाद एक मैदान से हटना शुरू कर दिया, यहां तक कि वे भी जिन्होंने शुरुआती प्राथमिकियों में अपेक्षाकृत अच्छा प्रदर्शन किया था। यानि एलिजाबेथ वारेन, जिन्होंने उन्हीं कुछ बिंदुओं को उठाया था, जिनको लेकर सैंडर्स लड़ रहे थे, एक को छोड़कर ये सभी, बड़े मंगलवार की प्रतिस्पर्धा से पहले ही बाहर हो गए (यह नाम इसलिए क्योंकि उसी दिन कई राज्यों में प्राथमिक चुनाव होते हैं)। इससे पहले, दक्षिण कैरोलिना में हुए डेमोक्रेटिक प्रतिस्पर्धा में, जहां अफ्रीकी अमेरिकीयों का प्रभुत्व है, पूर्व उपराष्ट्रपति, जो बिडेन, जिन्होंने इससे पहले की प्राथमिकियों में बहुत बुरा प्रदर्शन किया था, ने व्यापक जीत हासिल की थी। हाल की रमति में, किसी भी ऐसे उम्मीदवार ने, जिसने पहली तीन प्राथमिकियों में जीत हासिल की हो, एक ऐसे उम्मीदवार से नामांकन नहीं हारा था, जिसने लड़कर इन तीनों प्राथमिकियों में बुरा प्रदर्शन किया था। कई बार, एक उच्च बिंदु पर पहुँचना गिरने की शुरुआत होती है। बर्नी सैंडर्स के साथ ऐसा ही हुआ है। लंबे समय से, जब तक वे दूसरे स्थान पर चल रहे थे, उनकी सेवाओं का उपयोग डेमोक्रेटिक पार्टी के दायरे में उन वर्गों को लाने के लिए किया जा रहा था, विशेष रूप से युवाओं और श्वेत मजदूरों को, जिन्होंने कारपोरेट प्रतिष्ठानों के साथ डेमोक्रेटिक पार्टी की घनिष्टता की वजह से अपने को दूर कर लिया था। लेकिन एक बार जब वे संभावित प्रतिनिधि के रूप में उभरने लगे, तो सत्ता के पीछे की असली शक्तियों ने उन्हें गिराने के लिए सभी तार खींचने शुरू कर दिए। ओबामा, दोनो क्लिंटन, यहां तक कि कार्टर भी, सभी ने बर्नी को हराने के लिए खूब मेहनत की। एक के बाद एक प्रत्याशी चुनाव से बाहर होने लगे, समुदायिक नेताओं और सांसदों व विधायकों ने बिडेन को समर्थन देना शुरू कर दिया। सब सैंडर्स को हराने के योजनाबद्ध अभियान का हिस्सा थे। डेमोक्रेटिक पार्टी के प्रबंधकों ने दिखा दिया कि सत्ता के तार किसके हाथ में हैं। एक बार फिर इस सच्चाई को बल मिला है कि पार्टियां वर्गों की प्रतिनिधि हुआ करती हैं; संयुक्तराज्य अमेरिका

के डेमोक्रेटिक पार्टी के मामले में, संयुक्त राज्य अमेरिका के बड़े पूंजीपति वर्ग की। और वर्गों के हित, वर्ग की वर्तमान आवश्यकताओं से परिभाषित होते हैं; इस मामले में, अमेरिका के बड़े पूंजीपति के।

सैंडर्स ने 2016 में भी कुछ मुद्दों पर अपना अभियान चलाया था जो इस बार भी थे। इनमें एकल भुगतान के साथ सभी के लिए सरकारी वित्त पोषित चिकित्सा, कोई ट्यूशन फीस नहीं होना, न्यूनतम वेतन 15 डालर प्रतिघंटा की दर से होना, आदि, थे। ये सुधारवादी कदम ढंग से पूंजीवादी व्यवस्था की परिधि के भीतर ही आते हैं और पहले से ही कुछ यूरोपीय देशों में अलग-अलग हद तक अमल किये जा रहे हैं, फिर भी कारपोरेट अमेरिका इनसे कोई लेना देना नहीं रखना चाहता है। इन सभी कदमों को अमल में लाने का अर्थ है कि सरकार को खर्च बढ़ाना होगा, जिसके लिए करों को बढ़ाकर आय बढ़ानी होगी। सैंडर्स ने उन अति अमीरों पर कर बढ़ाने का प्रस्ताव भी दिया था, जिन पर अभी करों की दर बहुत कम है। सैंडर्स द्वारा लाए गए ये कदम एक हद तक पुनर्वितरण नीतियों का हिस्सा हैं। सैंडर्स ने खुद को लोकतांत्रिक समाजवादी के रूप में प्रस्तुत किया था। अमेरिकी मुख्यधारा के मीडिया ने उन पर कम्युनिस्ट, स्टालिनपंथी, इत्यादि होने का तमगा लगाया था। वास्तव में, वह ज्यादा से ज्यादा एक पूंजीवादी समाजवादी हैं, यानी जो पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर कुछ जनपक्षधर कदमों के बारे में सोचते हैं और इसके लिए काम करते हैं और अपने प्रयासों को समाजवादी कहते हैं। उनके प्रयास विफल रहे, इसका कारण है संयुक्तराज्य अमेरिका में एकाधिकारवादी पूंजीवाद की वर्तमान मुहिम, ना कि यह, कि यह कदम एक पूंजीवादी व्यवस्था में सैद्धांतिक रूप से असंभव हैं। यह कारपोरेट ही है जिसने डेमोक्रेटिक पार्टी के प्रबंधकों, पूर्व राष्ट्रपतियों, जिनके अपने समर्थक हैं, और बड़े पैसे पर चलने वाले स्थानीय नेताओं की संयुक्त शक्ति को बर्नी को जीतने से रोकने में लगा दी।

पिछली बार के विपरीत, यानी 2016 से, जब डेमोक्रेटिक पार्टी ने बर्नी सैंडर्स की संभावना को कम करने के लिए कई आलोचनाएं अर्जित की थीं, इस बार पूरा खेल अधिक व्यवस्थित और अधिक चालाकी के साथ खेला गया था। पूरा मुद्दा इस बार पदधारी, डोनाल्ड ट्रम्प के व्यक्तित्व पर केंद्रित किया गया। मुद्दा उसे पराजित करना बनाया गया,

ना कि उसके द्वारा अमल की जा रही उन नीतियों को पराजित करना, जो अमेरिका के आम लोगों को प्रभावित कर रही हैं। यह इस लड़ाई का एक मात्र नारा रहा। इसे भी यह ठोस रूप दे दिया गया कि उसे हरा कौन सकता है। यह उनके सभी प्रतिद्वंद्वियों ने एक सुर में प्रचार किया, जिससे सरासर शोर के माध्यम से सैंडर्स के नवंबर में ना जीत पाने की एक धारणा बनने लगी। मतदाता रुझानों में जब यह बात सामने आयी कि अन्य डेमोक्रेटिक पार्टी के दावेदारों की तुलना में सैंडर्स ही ज्यादा आसानी से डोनाल्ड ट्रम्प को हरा देंगे, तो जीत पाने के सवाल को इस बिन्दु पर और केंद्रित कर दिया गया कि डेमोक्रेटिक पार्टी को सबसे अच्छे ढंग से एकताबद्ध कौन कर सकता है। इस प्रकार तैयार किए गए सवाल के साथ, यह अपरिहार्य था कि स्थापना का एक उम्मीदवार, यानी तथाकथित उदारवादी रुझान ही, स्वाभाविक विकल्प होगा। यह कारपोरेट पक्ष द्वारा समर्थित उदारवादी रुझान ही है जो पार्टी के मूल में है। इसमें कोई भी व्यक्ति हर चीज पर प्रश्न कर सकता है, यहां तक कि श्वेत वर्चस्व पर भी सवाल उठा सकता है, लेकिन कार्पोरेट मुनाफे पर सवाल उठाने से दूसरी स्थिति बन जाएगी। इस अनुशासनहीनता को माफ नहीं किया जा सकता है और नहीं किया गया। यह स्पष्ट है, जैसा कि हमने 2016 के चुनावों में अपनी टिप्पणी में कहा था, कि यदि चुनाव उस स्थिति तक पहुंच जाता है, यानी कि यदि वे दोनों नहीं जीत सकते, तो डेमोक्रेटिक पार्टी कारपोरेट समर्थन को बनाए रखने के लिए व्हाइट हाउस की लड़ाई को हारना पसंद करेगी। यह है डेमोक्रेटिक पार्टी का वर्गचरित्र।

सैंडर्स द्वारा अपने अभियान को निलंबित करने और जो बिडेन को समर्थन देने के साथ, वे लोग जो उनके प्रस्तावित कदमों में समाजवाद की प्राप्ति देख रहे थे, उनकी आशाएं चकनाचूर हो गयीं। ये आमतौर पर वे ताकतें हैं और संशोधनवादियों से जुड़े वे बुद्धिजीवी तबके हैं जो इस बात की आशा करते हैं कि समाजवाद वर्ग संघर्ष के दायरे, मजदूर वर्ग द्वारा प्रतिक्रियावादी शासक वर्गों के शासन को उखाड़ फेंकने के संघर्ष के बाहर से ही पैदा हो जाएगा। लंबे समय से ये वर्ग सार्वजनिक क्षेत्र को समाजवादी, संरचनात्मक समाजवाद का भिन्न रूप बताते रहे हैं।

सैंडर्स का पूरा आंदोलन, उनके द्वारा उठाए गए मुद्दों के बावजूद, सदस्यों का पंजीकरण करने, वोटर्स से मतदान करवाने, इत्यादि चुनावी गणित के इर्द-गिर्द ही विकसित हुआ। श्रमिकों को, उनसे संबन्धित मुद्दों पर गोलबंद करने का प्रयास भी नहीं किया गया। उन्होंने सामाजिक उत्पीड़न को संबोधित करने का भी कोई प्रयास नहीं किया, जो अफ्रीकी अमेरिकियों से संबंधित बड़ी ज्वलंत समस्या है। उन्होंने इस दिशा में देर से कुछ प्रयास किए लेकिन यह बहुत कम थे और देर से हुए। दूसरी ओर, इन समूहों के सामाजिक नेता डेमोक्रेटिक पार्टी से जुड़े हुए हैं और उनकी पकड़ को तोड़ना तब तक इतना आसान नहीं है, जब तक

इन सामाजिक समूहों के आम सदस्यों को उत्प्रेरित ना किया जाए और उसे वर्गीय मुद्दों के साथ ना जोड़ा जाए। अन्यथा पहचान की राजनीति बार-बार, कुछ सतही सुधारों का वादा करने वाली ताकतों को इन समूहों के मत दिलवा देता है। सैंडर्स डेमोक्रेटिक पार्टी के प्रबंधन के खिलाफ खड़े हुए, लेकिन उसके उस जाल को चुनौती देने के लिए ऐसा कुछ भी नहीं किया जिसके दायरे में वह काम करता है और अपने प्रभाव को बनाए रखता है।

इससे पहले ब्रिटेन में हाल ही में हुए आम चुनावों में कॉर्बिन की हार ऐसी ताकतों के लिए निराशा बन चुकी थी, यानी वे ताकतें जो मजदूर वर्ग को सत्ता में लाए बिना समाजवाद का निर्माण करना चाहती हैं। उनकी हार के कारण कुछ अलग हैं, हालांकि अंतिम परिणाम वही है। कॉर्बिन इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी के नेता के रूप में उभरे क्योंकि लेबर पार्टी की कतारों का, ब्लेयरपंथी न्यू लेबर की नीति से मोह भंग हो गया था। इराक में विनाशकारी आक्रामकता ब्रिटेन में श्रमिकों के बीच व्यापक रूप से अलोकप्रिय थी। न्यू लेबर द्वारा पूरी तरह से नव-उदारवादी नीतियां अमल करने के कारण इसकी स्थितियों में गिरावट आई थी। औद्योगिक श्रमिक वर्ग में लेबर की क्रमिक लेकिन स्थिर गिरावट आई थी क्योंकि अधिक से अधिक श्रम गहन उद्योग विदेशों में स्थित थे और खनिज उद्योग में गिरावट आई थी। श्रमिक वर्ग की ताकत में गिरावट के साथ, लेबर पार्टी ने ट्रेड यूनियनों के महत्व को कम करना शुरू कर दिया था, जो लेबर पार्टी की एक प्रमुख घटक हैं। 2008 के बाद से विश्व वित्तीय आर्थिक संकट के विस्फोट के बाद, कामगार वर्ग पर प्रतिकूल प्रभाव गम्भीर हो गया। न्यू लेबर ने पूरी तरह से नव-उदारवाद को गले लगा लिया, और बड़े पूंजीपतियों ने जब अपने मुनाफे को बढ़ाने के लिए और हमले शुरू किए तो न्यू लेबर ने लेबर पार्टी पर अपना नियंत्रण भी खो दिया। कॉर्बिन से पहले ईद मिलिबांद नेता थे। मिलिबांद द्वारा चुनाव हारने के बाद, कॉर्बिन ने मजदूर वर्ग की चिंताओं को संबोधित व अभिव्यक्त करते हुए मजदूरों को अपने करीब लाने का प्रयास किया और वे पार्टी के नेतृत्व में आ गये। परिधि में पड़े हुए कॉर्बिन को लेबर पार्टी केंद्र में ले आयी। कुछ ट्रोट्स्कीपंथी समूहों ने भी, जो कि स्तालिनवाद के प्रति अपनी घणा के कारण मजदूर वर्ग की क्रांति को लंबे समय से त्याग चुके हैं, इसमें अपनी भूमिका निभाई थी।

कॉर्बिन ने नव-उदारवादी नुस्खों की अस्वीकृति के आधार पर लेबर की कतारों को प्रेरित कर लिया। उनका मंच सैंडर्स के समान था। ट्यूशन फीस और स्टूडेंट लोन की छूट, स्वास्थ्य और शिक्षा पर खर्च में बढ़ोतरी, न्यूनतम वेतन में वृद्धि और इन सभी को अति धनी लोगों पर टैक्स बढ़ाकर पूरा किया जाना, उनकी मांगें थीं। कॉर्बिन कुछ और मांगें भी उठा रहे थे। उन्होंने कुछ उद्योगों और सेवाओं के राष्ट्रीयकरण की भी वकालत की। कॉर्बिन तीसरी दुनिया

के देशों में प्रगतिशील सवालों के समर्थन में सक्रिय थे, एक ऐसा मुद्दा जिस पर सैंडर्स इतने सक्रिय नहीं थे। कार्बिन ने ऐसे कुछ मुद्दों का भी समर्थन किया था जिसमें उन्हें लेबर पार्टी और उसके महत्वपूर्ण हिस्से के खिलाफ जाना पड़ा। कार्बिन लंबे समय तक लेबर की पीछे की कतारों में रहे, लेकिन उन्हें सामने लाया गया था।

ब्रिटेन में मजदूर वर्ग की बिगड़ती परिस्थितियों और उद्योगों की गिरावट के मद्देनजर, शासक पूंजीपतियों को अपनाई जाने वाली रणनीति पर एक विभाजन का सामना करना पड़ा। साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच विरोधाभास और व्यापार प्रतिद्वंद्विता बढ़ने और 2008 के विश्व वित्तीय आर्थिक संकट के बाद विशेष रूप से तेज होने के साथ, बड़े पूंजीपति महाद्वीपीय यूरोप या अमेरिका के साथ गठबंधन करने के सवाल पर विभाजित थे। बड़े पूंजीपति वर्ग का एक हिस्सा संयुक्तराज्य अमेरिका के करीब संरक्षित होने और अमेरिका के वर्चस्व वाले विश्व बाजार में अपनी जगह बनाने की ओर झुक गया था। इसने ब्रिटेन में पुराने समय की स्थिति पुनः स्थापित करने की उम्मीद जगाई जब साम्राज्य से सूरज कभी ढलता नहीं था। वे अप्रवासी श्रमिकों के खिलाफ घ घना फैलाने लगे, जो पूर्वी यूरोपीय देशों के श्रमिकों के खिलाफ भी निर्देशित था, जिन्हें यूरोपीय संघ के सदस्य होने के कारण यूके में आने का अधिकार था। यह कदम यूरोपीय संघ (ब्रेक्सिट) से बाहर आने की मुहिम में बदल गया। ब्रिटेन में श्रमिकों ने जीवन के मानकों में आई गिरावट के कारण ब्रेक्सिट का समर्थन किया, जो उनके बीच संकट के समाधान के रूप में प्रचारित किया गया। मध्यम वर्गों के एक महत्वपूर्ण हिस्से ने यूरोपीय संघ छोड़ने का विरोध किया। श्रमिक वर्ग के समर्थन के साथ, ब्रेक्सिट ने 52.1 फीसदी वोट प्राप्त कर जनमत समूह में जीत दर्ज की। यह वह स्थिति थी जब कार्बिन लेबर पार्टी के नेतृत्व में आए थे। वह ऊपर वर्णित कुछ नीतिगत नुस्खों को स्पष्ट करने के अलावा ब्रेक्सिट के समर्थक थे। जहां उनके नेतृत्व में मजदूरों के बीच समर्थन में वृद्धि हासिल हुई, लेबर पार्टी के महत्वपूर्ण नेताओं ने उनका खुलकर विरोध किया। उनके नेतृत्व को कमजोर करने के प्रयास में कार्बिन (सैंडर्स की तरह) के ना जीत पाने का एक योजनाबद्ध अभियान चलाया गया। हालांकि, थेरेसा मे द्वारा संसद के माध्यम से अपने ब्रेक्सिट डील को सुरक्षित करने के लिए बुलाए गए चुनाव में, कार्बिन की लेबर पार्टी ने अपेक्षाओं से परे प्रदर्शन किया; कंजर्वेटिवों से उनका बहुमत छीन लिया। महत्वपूर्ण लेबर नेताओं द्वारा खुली तोड़फोड़ के बावजूद (अच्छी तरह से ज्ञात, लेकिन हाल ही में जारी किए गए दस्तावेजों में भी प्रमाणित) कार्बिन के नेतृत्व में लेबर सत्ता पर कब्जा करने के करीब आ गया। इस चुनाव ने उनके खिलाफ ना जीत पाने के प्रचार को समाप्त कर दिया। इसके बाद से यह लड़ाई दूसरे दायरे में चली गई। लेबर पार्टी के कुछ हिस्सों ने यह धमकी दी कि अगर पार्टी ब्रेक्सिट छोड़ने की मांग का

समर्थन नहीं करती, यानी पहले जनमत संग्रह को रद्द करने के लिए दूसरे जनमत संग्रह की मांग नहीं करती तो वे पार्टी छोड़ देंगे। कार्बिन विरोधी न्यू लेबर गुर्गों की यह योजना कार्बिन को सत्ता में आने से रोकने के लिए थी, यहां तक कि उनकी अपनी पार्टी को कमजोर करने की कीमत पर भी। यह योजना ब्रेक्सिट विरोधी मतदाताओं के एक हिस्से को लिबरल डेमोक्रेट्स की ओर मोड़ने की थी। इस बीच एंटी-कार्बिन तबकों ने, लेबर पार्टी में, यहूदी विरोधी सवाल पर एक जबरदस्त अभियान चलाते हुए, फिलिस्तीनियों को समर्थन देने के लिए कार्बिन पर निशाना साधा।

इस सब ने कार्बिन को रक्षात्मक बना दिया। उन्होंने अपने विरोधियों, न्यू लेबर नेताओं के साथ शांति बनाने का प्रयास किया। लेकिन सबसे आत्मघाती कदम था ब्रेक्सिट के सवाल पर उनका पीछे हटना, जिसने मजदूरों में मजबूत पकड़ बना ली थी और संसद को जनमत संग्रह में अभिव्यक्त ब्रिटिश जनता की इच्छा को निराश करते हुए देखा जा रहा था। संभवतः वे शक्ति की गंध से प्रभावित हो गये थे। कार्बिन ने दूसरे जनमत संग्रह की मांग का समर्थन कर दिया और यह एहसास नहीं किया कि इस तरह से पीछे हटकर वे चुनाव को ही दूसरा जनमत संग्रह बना रहे हैं। उन्हें बड़ी हार का सामना करना पड़ा जिसके कारण वे बाहर हो गये। ब्रेक्सिट को केन्द्र में रखने में बड़े पूंजीपति सफल रहे जिसने कार्बिन के मंच को लुप्त कर दिया।

जहां सैंडर्स ने अपनी दत्तक पार्टी के प्रबंधकों के खिलाफ खड़े होने के लिए कीमत चुकाई, कार्बिन ने इसके सामने झुकने की कीमत चुकाई। दोनों ही मामलों में पार्टियों का वर्ग चरित्र, जिसके माध्यम से वे अपने एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए प्रयासरत थे, बाधक बना। शासक वर्गों की सभी पार्टियाँ, विशेषकर बड़ी पार्टियाँ और विशेष रूप से सत्ता से बाहर होने के दौरान, लोगों की चिंताओं को ध्यान में रखते हुए, एक ऐसा पक्ष खड़ा कर लेती हैं, जो जनता की चिंताओं को अभिव्यक्त करती हैं (इन्हें दक्षिणपंथी पार्टियों का 'वाम' पंथ भी कहा जाता है), पर उसे अधीनस्थ स्थिति में ही रखती हैं। एक हद तक इसका मतलब लोगों की चिंता को पहचानना भी है, लेकिन मूल रूप से अपनी नीतियों के विरोध को कमजोर करना है। जबकि सभी बुर्जुआ पार्टियाँ उसी तरह से चुनावी वादे करती हैं, जैसे कि एक विक्रेता अपने माल के बारे में प्रचार करता है, 'वाम' पक्ष की उपस्थिति उनके वादों को विश्वसनीयता प्रदान करती है।

नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों के प्रति जनता के विरोध 1 के झंडाबरदार के रूप में सैंडर्स और कार्बिन के उदय से पहले, जो विशेषकर 2008 के बाद के विश्व वित्तीय आर्थिक संकट के विस्फोट के बाद जनता पर थोपी गयी कठिनाईयों के बाद उभरे, इस दिशा की यूरोप में कुछ अन्य अभिव्यक्तियों भी हुई थीं। सैंडर्स और कार्बिन द्वारा अपने देशों की मुख्य शासक वर्ग की पार्टियों के बीच, इस दिशा की अभिव्यक्ति

की गयी। दक्षिणी यूरोप में पहले की अभिव्यक्ति नए दलों की स्थापना या कुछ ऐसे दलों को मजबूत करने के रूप में थी, जो अपने देशों की मुख्य राजनीतिक पार्टियां नहीं थीं। 2008 के बाद के यूनान के संकट में लोगों की हालत बिगड़ने के साथ, उस देश में सीरिजा आगे बढ़ गयी, जो एक छोटी पार्टी से एक प्रमुख पार्टी बन गयी थी। 2008 के संकट के बाद शासक वर्गों ने कल्याणकारी योजनाओं पर खर्च कम करने, श्रमिकों के वेतन और सामाजिक सुरक्षा लाभों को कम करने, सेवानिवृत्त लोगों की पेंशन घटाने, आम तौर पर लोगों पर खर्च को कम करने के लिए मितव्ययिता के उपायों को अपनाया।

मुख्य जोर राज्य के ऋण दायित्वों को पूरा करने के लिए खर्च को कम करने और सस्ता उत्पादन करके फिर से निर्यात बढ़ाने का था। जबकि बड़े पूंजीपतियों ने पहले के दौर में मुनाफा कमाया था, इस संकट का बोझ मेहनतकश जनता के कंधों पर डाला गया था। पूंजीपतियों को, जो समस्या के रचनाकार थे, उद्धारकर्ताओं के रूप में पेश किया गया और संरक्षित किया गया। यूरो जोन देशों में मितव्ययिता उपायों को मौद्रिक नीतियों के रूप में लागू किया गया था, यानी मुद्रा यूरोपीय सेंट्रल बैंक (ईसीबी) के नियंत्रण में थी। मितव्ययिता उपायों के अलावा, अन्य विकल्प जर्मनी द्वारा नियंत्रित ईसीबी द्वारा बेल आउट था। उपर्युक्त मितव्ययिता उपायों के कार्यान्वयन की शर्त के साथ बेल आउट प्रदान किया गया था। दक्षिणी यूरोपीय देशों में जहां लोगों में इस संकट का दर्द अधिक तीव्र था, मितव्ययिता के उपायों ने लोगों के तीव्र विरोध को उत्प्रेरित कर दिया।

मितव्ययिता योजना का विरोध करके सीरिजा ने ख्याति प्राप्त की। लेकिन सीरिजा द्वारा दिखाया व प्रचारित किया गया रास्ता यूरोपीय संघ के साथ बेलआउट पैकेज पर पुनः समझौता करना था। मितव्ययिता के विरोध को शुरू से यूरोपीय संघ द्वारा इसके लिए सहमति देने के साथ जोड़ दिया गया था क्योंकि यूरोपीय संघ से बाहर निकलने के सवाल को शुरू से ही त्याग दिया गया। पर हाथ मिलाने के लिए दो पक्षों की जरूरत होती है। यूरोपीय संघ ने पीछे हटने से मना कर दिया और सीरिजा ने जो अश्वासन दिया था वह इसी बुनियाद पर टिका था। हालाँकि, सीरिजा को यूनान में मजदूरों के बीच लगभग पूर्ण समर्थन प्राप्त था, उसने श्रमिकों पर भरोसा ना करके यूरोपीय संघ में प्रभाव रखने वाले बड़े पूंजीपतियों की उदारता पर भरोसा किया। सीरिजा यूनान के सत्तारूढ़ पूंजीपतियों की मुख्य प्रतिनिधियों में से नहीं थी, पर उसने चांद-तारों का वादा करके यह दर्जा हासिल कर लिया, यानि यूरो क्षेत्र में बने रहते हुए भी मितव्ययिता योजना को अमल ना करने का; बिना किसी शर्त के बेलआउट दिलाने का। उसने स्थिति का गलत मूल्यांकन किया या असल में यूनान के लोगों के बीच यह भ्रम पैदा किया कि यूरोप के बड़े पूंजीपतियों को अपने वर्ग हितों को त्यागने के लिए राजी किया जा सकता है, केवल इसके

लिए सिंप्रास जैसे अच्छे प्रोत्साहक की जरूरत है। सीरिजा का प्रयास विफल रहा और पहले की प्रभावशाली पार्टियों का प्रभुत्व पुनः बहाल हो गया। सीरिजा ने, जिसमें ट्रोत्स्कीपंथियों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, इस प्रकार लोगों को धोखा देने का काम किया। उन्होंने जानबूझकर मजदूर वर्ग द्वारा अपना स्वयं का रास्ता चयनित करने का यह अवसर बर्बाद कर दिया। इसने एक बार फिर से यह बात साबित कर दी कि मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी संभावनाओं में, अन्य मेहनतकश वर्गों का नेतृत्व करने की उसकी क्षमता में, ट्रोत्स्कीपंथियों का कोई विश्वास नहीं है, यह एक ऐसा सबक है, जिसको हर देश में, हर युग में बार-बार प्रचलित करने की आवश्यकता है।

एक बार फिर से, यह सबक कि, एक मजदूर वर्ग की पार्टी के नेतृत्व के बिना कोई मजदूर वर्ग का आंदोलन खड़ा नहीं हो सकता है, सामने आया है। कुछ एमएल संगठनों ने सीरिजा का समर्थन किया, पर जल्द ही उन्हें इस सच का एहसास हो गया। इस विकास का यह पक्ष सकारात्मक रहा कि मेहनतकश जनता मुख्य शासकवर्ग की पार्टियों के प्रभाव से बाहर आने को तैयार थीं। क्रांतिकारी राजनीति, हालांकि, न केवल स्थापित शासक वर्ग के दलों को खारिज करने की मांग करती है, बल्कि शासक वर्गों की राजनीति को भी। सीरिजा ने शासक वर्ग के ढांचे के भीतर ही अपनी स्थिति को अभिव्यक्त किया। इसने संसदीय संस्थानों की, वर्तमान व्यवस्था में लोगों की बढ़ती कुंठाओं को दूर करने के वाहक के रूप में, प्रभावकारिता के बारे में भ्रम पैदा किया।

स्पेन, यूनान की तुलना में बहुत बड़ा देश, में पेडेमोस का भाग्य, सीरिजा के बाद चढ़ा और फिर गिरा। उन्होंने भी शासक वर्गों के मुख्य दलों के बाहर से परन्तु शासक वर्ग के ढांचे के भीतर लोगों की चिंताओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। उन्हें चुनावी सफलताएँ मिलीं लेकिन यूनान में सीरिजा के द्वारा हथियार डालने के साथ, इसका मुख्य मंच, यानी शासक वर्ग के ढांचे के भीतर लोगों की चिंताओं को दूर करने का संबोधित करना या और ठोस रूप से स्पष्ट कहें तो यूरोजोन में रहते हुए मितव्ययिता से छुटकारा पा सकें, ध्वस्त हो गया। जब मामला निर्णायक मोड़ पर पहुँचा, तो उन्होंने अपने निम्न पूंजीवादी टुटपुंजियेपन का प्रदर्शन किया, जाहिर है कि उनके पास सर्वहारा साहस नहीं था। स्पेन में पेडेमोस, यूनान में सीरिजा के पास कुछ चुनावी आधार बचा हुआ है, लेकिन यह सामान्यशासकवर्ग की राजनीति ही है। उनके बड़बोले बयान चाहें जो हों, वे मूलतः उनके कार्यक्रम के भ्रामक चरित्र की ही याद दिलाते हैं।

सैंडर्स, कॉर्बिन, सीरिजा, पेडेमोस, ये सभी और उनसे कम प्रख्यात संस्करण, केवल इस तथ्य को उजागर करते हैं कि लोगों की चिंताओं को वर्तमान संकटग्रस्त पूंजीवादी साम्राज्यवादी व्यवस्था में संबोधित नहीं किया जा सकता है।

वर्तमान प्रणाली के लिए उनकी उपयोगिता मुख्य रूप से इसी बात में निहित है कि वे वर्तमान व्यवस्था के बारे में मेहनतकशों में भ्रम पैदा करते हैं और संघर्ष के रास्ते पर जाने से लोगों को रोकते हैं और उन्हें क्रांतिकारी दलों के पक्ष में जाने से रोकते हैं, जबकि अकेले यही ताकत लोगों की चिंताओं को दूर करने के संघर्ष को उसके तार्किक निष्कर्ष पर पहुँचाने, यानी साम्राज्यवाद और प्रतिक्रिया के वर्चस्व वाली वर्तमान व्यवस्था को उखाड़ फेंकने, का नेतृत्व कर सकते हैं। जैसे-जैसे वर्तमान व्यवस्था का संकट गहराता है, सार्थक सुधारों को आगे बढ़ाने की शासकों की क्षमता सीमित होती जाती है, जबकि ऐसे सुधारों की आवश्यकता लगातार बढ़ती जाती है। इन दोनों के बीच परस्पर क्रिया का परिणाम वर्ग संघर्ष और लोगों के आंदोलनों की तीव्रता से तय होती है और इस सबका परिणाम, क्रांतिकारी ताकतों की स्थिति, उनकी तैयारियों और सबसे महत्वपूर्ण बात, मेहनतकश जनता के साथ उनके संबंधों की गहराई से निर्धारित होती है। इन संबंधों को बनाना क्रांतिकारी ताकतों के सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है।

हालाँकि, इन ताकतों का उदय और शासक वर्गों की इन ताकतों को कुछ जगह देने की आवश्यकता, वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्विरोधों से पैदा हो रही है, पूंजी का संचय बहुत आगे और बहुत तेजी से हुआ है। यह संचित पूंजी मेहनतकशों द्वारा पैदा किये गये मूल्य में से अपने मुनाफे के लिए ज्यादा हिस्से की मांग करती है। दूसरी ओर, इस मुनाफे की प्राप्ति बाजारों पर निर्भर होती है, यानी उत्पादन की बिक्री पर, जिसके लिए प्रभावी मांग, यानी क्रय शक्ति द्वारा समर्थित मांग को बढ़ाने की आवश्यकता होती है, हालाँकि, पूंजी द्वारा मूल्य के बड़े हिस्से को ले लेने से, मेहनतकशों के पास इसका कम हिस्सा बचता है, जबकि ये ही लोग मांग का प्रमुख हिस्सा हैं। मुनाफा प्राप्त किए बिना पूंजी उत्पादन नहीं करेगी, और पूंजी निष्क्रिय नहीं रहेगी, यानी मुनाफा जरूर सुरक्षित करेगी। यह पूंजीवादी साम्राज्यवाद की बढ़ती उग्र प्रकृति को जन्म दे रहा है। यह व्यवस्था के बढ़ते अन्तर्विरोधों यानी साम्राज्यवाद और उत्पीड़ित राष्ट्रों के बीच अन्तर्विरोधों, पूंजीवादी देशों में श्रम और पूंजी के बीच अन्तर्विरोधों और साम्राज्यवादी शक्तियों और एकाधिकार समूहों के बीच अन्तर्विरोधों के मूल में है।

नव-उदारवाद, अपेक्षाकृत स्थिर बाजारों की अवधि में पूंजी के मुनाफे को अधिकतम करने का एक वाहन है। यह लाभ के रूप में, उत्पादित माल के संचित मूल्य, के ज्यादा से ज्यादा हिस्से को पूंजी की तिजोरी में भेजने का एक वाहन है। यह अन्य दावेदारों के हिस्से को कम करके, यानी, श्रमिकों को मिलने वाली मजदूरी (मजदूरी और सुविधाओं पर हमला), पूंजी के आपूर्तिकर्ताओं के ब्याज यानी, बैंक आदि (ब्याज दरों में कमी), सरकारों को मिलने

वाले कर को कम करके ऐसा करता है, जिसके परिणाम स्वरूप सरकार सामाजिक कल्याण योजनाओं से कटौती करती है। इसके अलावा, यह अपने उत्पादों को सभी कोनों तक ले जाना जारी रखती है, अपने दायरे के बाहर उत्पादन करने वालों को कुचल देती है या उन्हें अधीनस्थ करती है और सभी संसाधनों को अपने नियंत्रण में लाती है। नवउदारवादी शासन के तहत यह अभियान और तेज हो जाता है। लेकिन उत्पादित मूल्य के अन्य दावेदारों के हिस्से को कम करके, नव-उदारवाद के तहत पूंजी मुनाफे के लिए अपनी बढ़ी हुई मांगों की प्राप्ति की शर्तों को ही ध्वस्त कर देती है, जिससे पूरा तंत्र तेजी से उग्र हो जाता है, और अस्थिर भी। इसके परिणाम स्वरूप असमानता में लगातार वृद्धि होती है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था में अन्य सभी प्रतिभागियों की हिस्सेदारियों को कम कर देती है और उनके जीवन के हालातों को गिरा देती है और उनकी कामकाजी परिस्थितियों को तेजी से अनिश्चित बना देती है। असमानता का बढ़ना, बड़ी पूंजी (कार्पोरेट) के इशारे पर शासकों द्वारा अपनाई जा रही नीतियों का आकस्मिक नहीं, अपरिहार्य परिणाम है।

वर्तमान व्यवस्था तेजी से गहरा रहे संकट से ग्रसित है, क्रांतिकारी ताकतों के लिए अपार संभावनाओं से भरा हुआ है। इन संभावनाओं को वास्तविकता में बदलना, यानी क्रांतिकारी ताकतों के नेतृत्व में लोगों के संघर्ष को आगे बढ़ाना, आज की स्थिति की मुख्य चुनौती है। इन संभावनाओं की प्राप्ति जाहिर तौर पर शासक वर्गों के उनके खिलाफ प्रयासों का मुकाबला करने से होगी। वे शासकवर्ग की साजिशों और विभिन्न अन्य वर्गों की सीमाओं से मुखातिब होते भी रहे हैं और उन्हें होना भी पड़ेगा। वर्ग संघर्ष संभावनाओं को वास्तविकता में रूपांतरण करने का एकमात्र वाहन है, हालाँकि इसका क्रम टेढ़ा-मेढ़ा है और प्रत्येक मोड़ पर आगे बढ़ने के रास्ते को साफ करने की जरूरत है।



16 मई को एआईकेएमएस की बीकर, इलाहाबाद में विरोध सभा

आन्ध्र प्रदेश

जूट मिल मजदूरों द्वारा हड़ताल व प्रदर्शन

20 मई को आन्ध्र प्रदेश की दो जूट मिलों के मजदूर लॉकडाउन अवधि के अपने वेतन की भुगतान की मांग को लेकर बड़ी संख्या में संघर्ष पर उतरे। वे एलुरु जिले की जूट मिलों के मजदूरों के साथ, जो इफ्टू के नेतृत्व में पहले से हड़ताल पर हैं, के हड़ताल के कदमों के साथ जुड़ गए। 13,000 से ज्यादा मजदूर अपने न्यायोचित अधिकार के लिए हड़ताल पर चले गये। ये वो दिन था जब विजयनगरम



की जूट मिल के मजदूर पहले से ही हड़ताल कर रहे एलुरु के मजदूरों के साथ जुड़े और बड़े पैमाने पर उन्होंने विरोध करने पर लादे गये लॉकडाउन को तोड़ दिया।

20 मई की सुबह 6 बजे आन्ध्र प्रदेश के विजयनगरम जिले के सालूर शहर के एपी फाइबर्स जूट मिल के मजदूरों ने लॉकडाउन अवधि के दौरान शासनादेश अनुसार मजदूरी का भुगतान किए जाने की मांग को लेकर तत्काल हड़ताल कर दी। इनमें से बहुसंख्यक महिला मजदूर थीं। उन्होंने एक विशाल धरना शुरू किया जिसमें पहली पारी के लगभग 600 मजदूर थे। यह धरना जूट मिल के गेट के सामने आईएफटीयू के नेतृत्व में शुरू हुआ। मजदूरों ने नारे लगाते हुए मांग की कि मिल प्रबंधक तत्काल वहां पहुँचे और जैसा कि आन्ध्र प्रदेश की अन्य जूट मिलों में हुआ है, वे घोषित करें कि समझौतों के अनुसार वे शासनादेश में दर्ज मजदूरी के वेतन का भुगतान करेंगे।

बाद में सुबह के समय इसी मांग को लेकर नेल्लीमारला जूट मिल के मजदूर भी तत्काल हड़ताल पर चले गये। यह हड़ताल दूसरी पाली के मजदूरों ने ठीक 10 बजे शुरू की जो उनका काम शुरू करने का समय था। वे नेल्लीमारला जूट मिल के गेट पर नारे लगाते हुए बैठ गये। शुरू में इसमें 600 मजदूर शामिल थे, इसके बाद यह संख्या बढ़ गयी। ये दोनों ही मिलें पिछले तीन सप्ताह से काम कर रही थीं,

जिसमें ये शासनादेश अनुसार वैधानिक मजदूरी देने की जगह एक अग्रिम भुगतान कर रही थीं, जिसे वापस भी लिया जा सकता था।

इस मांग पर एपी के जूट क्षेत्र की सभी ट्रेड यूनियनों एकताबद्ध रूप से लड़ रही हैं। इसमें ट्रेड यूनियनों के संयुक्त झंडे तले करीब 10,000 मजदूर लड़ रहे हैं, जो आईएफटीयू, सीआईटीयू, एआईटीयूसी, टीएनटीयूसी, आईएनटीयूसी, आदि से हैं। ये विरोध लॉकडाउन शुरू होने के दूसरे दौर से हो रहा है।

तीन मिल प्रबंधकों ने, श्रीकाकुलम, विजयनगरम व विशाखापट्टनम की मिलों से सम्बन्धित ट्रेड यूनियनों के साथ समझौता किया कि वे शासनादेश के अनुसार हर मजदूर के वेतन का भुगतान करेंगी, जिसमें वे हर मजदूर को 5,000 रुपये वेतन के भुगतान हेतु देंगी। ये तीनों मिलें चल रही हैं।

लॉकडाउन के बाद जबसे काम शुरू हुआ है, आन्ध्र प्रदेश के पश्चिम गोदावरी जिले के एलुरु में स्थित दो जूट मिलों के करीब 5000 मजदूर हड़ताल पर रहे हैं। हालांकि प्रबंधकों ने एकतरफा कदम उठाते हुए मजदूरों से काम कराना शुरू कर दिया था और यूनियनों के साथ कोई समझौता नहीं किया था, मजदूर उसका पालन नहीं कर रहे हैं। नौ यूनियनों को मिलाकर बनी संयुक्त एक्शन कमेटी के नेतृत्व में एलुरु में 19 मई को श्रीकृष्णा जूट मिल एलुरु के सामने 1000 मजदूरों का बड़ा धरना आयोजित हुआ, जिसमें पुलिस के तमाम प्रतिबंधों को तोड़ा गया।

20 मई को सुबह करीब 11 बजे सालुरु जूट मिल प्रबंधकों के और इफ्टू यूनियन के बीच वार्ता शुरू हुई। उस समय मिल गेट के सामने धरना चल रहा था। तड़तड़ाती गर्मी बढ़ने के बावजूद मजदूरों के संख्या बढ़ती गयी। यह मुख्यतः महिला मजदूरों की भागीदारी बढ़ने के साथ 700 पहुँच गयी। अंत में जिला प्रशासन ने आश्वासन दिया कि वे भुगतान के सवाल को तत्काल देखेंगे। कुछ देर बाद नेल्लीमारला में भी प्रशासन के माध्यम से प्रबंधक वार्ता करने आए और इफ्टू समेत तीनों यूनियनों ने वार्ता में भाग लिया और यह कहते हुए विरोध को वापस लेने का निर्णय लिया कि अगर शासनादेश का पालन नहीं किया तो यह पुनः शुरू कर दिया जाएगा।

इस बीच करीब 1000 मजदूरों ने आन्ध्र प्रदेश के पश्चिम गोदावरी जिले के जिला मुख्यालय कार्यालय पर केन्द्र सरकार द्वारा 29 मार्च 2020 को जारी शासनादेश के अमल, जिसे राज्य सरकार ने भी जारी किया था, की मांग

(शेष पृष्ठ 16 पर)

विरोध प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू

12 मई को पंजाब के नवांशहर में इंडियन फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन, इफ्टू के झंडे तले 500 मजदूरों ने प्रदर्शन किया। मजदूरों ने लॉकडाउन के आदेश का उल्लंघन करते हुए अपना विरोध जताया और सरकार द्वारा श्रम कानून को स्थगित करने की निन्दा की। प्रदर्शनकारियों ने मांग की कि सभी मजदूरों को राशन उपलब्ध कराया जाए जो दूसरे प्रदेशों के जो मजदूर अपने घर वापस जाना चाहते हैं, उन्हें घर भेजने के लिए व्यवस्था की जाए और पुलिस दमन बंद किया जाए।

प्रदर्शनकारियों को सम्बोधित करने वालों में पंजाब राज्य इफ्टू अध्यक्ष कुलविंदर सिंह वाराइच, प्रेस सचिव जसवीर दीप, प्रवीण कुमार निराला, हरे राम, हरे लाल, रामबिछ आजाद, आदि शामिल थे। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को रोकने का प्रयास किया परन्तु उसका विरोध करते हुए प्रदर्शन किया गया।

11 मई को प्रोग्रेसिव ऑर्गनाइजेशन, पीओडब्ल्यू और एमएनएसएस ने विशाखापट्टनम शहर के 5 केन्द्रों पर प्रदर्शन किये और मंडल कार्यालय पर धरना देते हुए एलजी पॉलीमर्स को स्थाई रूप से बंद करने तथा इसके मालिकों को गिरफ्तार करने की मांग उठाई। इस प्लांट को बंद करने के लिए विरोध चल रहे हैं। सैकड़ों की संख्या में स्थानीय निवासियों ने प्लांट के अंदर घुसकर इसको बंद करने की मांग को लेकर प्रदर्शन किया है।

जूट मिल मजदूरों द्वारा हड़ताल व प्रदर्शन

(पृष्ठ 15 का शेष)

को लेकर धरना शुरू कर दिया। यह कहता है कि लॉकडाउन अवधि की मजदूरी मजदूरों को दी जाएगी। धरने का नेतृत्व संयुक्त एक्शन कमेटी- इफ्टू, ऐटक, सीटू, एआईटीयूसी व टीएमटीयूसी ने किया। जिला प्रशासन ने तुरन्त उचित कर्वाइ करने का आश्वासन दिया। यह लॉकडाउन अवधि की अब तक की सबसे बड़ी जन कार्यवाही है। पुलिस ने अपने तरीके से इसे रोकने का प्रयास किया पर मजदूर दृढ़ता के साथ एकताबद्ध रहे। अंत में जिला प्रशासन लॉकडाउन अवधि के वेतन के भुगतान की समस्या को हल करने का आश्वासन देने को बाध्य हुआ।

(इफ्टू आन्ध्र प्रदेश राज्य अध्यक्ष का. पी. प्रसाद की रिपोर्ट पर आधारित)

मई व जून का वेतन ना मिलने से आक्रोशित प्रवासी मजदूरों ने जमीन प्राप्ति संघर्ष समिति, जेडपीएससी, के नेतृत्व में 15 मई को बड़ी संख्या में, संगरूर भवानीगढ़ राजमार्ग पर घबदान के निकट स्थित अपनी कम्पनी के मुख्य द्वार पर भारी संख्या में प्रदर्शन किया। जेडपीएससी नेता गुरमुख सिंह के अनुसार कम्पनी ने दो माह का वेतन नहीं दिया है और ओवर टाइम नहीं दिया है। मजदूरों ने यह प्रदर्शन भवानीगढ़ में बलियाल रोड से शुरू किया और कम्पनी गेट के मुख्य द्वार पर धरने के रूप में बैठ गये। जेडपीएससी अध्यक्ष मुकेश मलौद ने बताया कि कम्पनी के प्रबंधकों द्वारा वेतन तथा ओवर टाइम का भुगतान करने का आश्वासन करने के बाद ही धरना उठाया गया। प्रशासनिक अफसरों ने भी इस बात को स्वीकार किया कि वेतन भुगतान ना करने की समस्या है और वे भी इस प्रयास में लगे हैं कि भुगतान हो।

पंजाब में पटियाला में गैस एजेंसी वर्कर्स यूनियन ने श्रम विभाग के कार्यालय के बाहर धरना दिया। वे श्रम कानूनों पर हमलों का विरोध कर रहे थे तथा पी.पी.ई. दिये जाने तथा कोरोना जांच किये जाने की मांग कर रहे थे।

श्रम कानूनों पर हमलों के खिलाफ इफ्टू की नेशनल कमेटी के आवाहन पर देश के विभिन्न हिस्सों में विरोध प्रदर्शन चल रहे हैं। 24 यूनियन 2020 को इफ्टू से सम्बद्ध एन.टी.पी.सी. टेका मजदूर यूनियन ने एन.टी.पी.सी. कहलगांव भागलपुर के गेट पर धरना दिया तथा प्रदर्शन किया। हैदराबाद में उस्मानिया विश्वविद्यालय के गेट पर भी इफ्टू यूनियन ने विरोध प्रदर्शन किया।

अखिल भारतीय किसान संघर्ष समन्वय समिति के आह्वान पर 16 मई को अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा के नेतृत्व में पंजाब, तेलंगाना, उ.प्र., आंध्र प्रदेश, ओडिशा में कई स्थानों पर 'किसान सम्मान दिवस' आयोजित किया गया। कार्यक्रम में कार्यक्षेत्रों में किसानों व मजदूरों ने ग्रामांचल में बढ़ रहे संकट के मद्देनजर भारी उत्साह के साथ भागीदारी की और तख्तियों पर मांगें लिखकर, झंडे व बैनरों के साथ मुख्यतः गावों में धरने दिये।

सभी क्षेत्रों में कोरोना वायरस के प्रवाह को रोकने की हिदायतों का पालन करने के साथ मांग की गयी कि किसानों व मजदूरों के सभी कर्ज माफ किए जाएं, पुराने केसीसी को रद्द घोषित कर नई खरीफ की फसल के लिए केसीसी की किश्त जारी की जाए तथा जब सरकार ने हवाई जहाज के ईंधन का दाम 22.54 रुपये लीटर किया है तो डीजल व पेट्रोल का दाम भी 22 रु० लीटर किया जाए।

Pratirodh Ka Swar, Hindi Organ of CPI(ML)-New Democracy Website : cpimlnd.org

प्रकाशक, मुद्रक व स्वामी यतेन्द्र कुमार द्वारा स्टार ऑफसेट, टी-2151/8-ए-2, न्यू पटेल नगर, नई दिल्ली-110008 से मुद्रित व बालमुकन्द खण्ड, गिरी नगर, नई दिल्ली-110019 से प्रकाशित। सम्पादक : यतेन्द्र कुमार